यदि पाप करे तो उसे फिर फिर न करे। उसमें रत न होवे। पाप का संचय दुःख का कारण होता है। यदि पुण्य करे तो उसे फिर फिर करे। उसमें रत होवे। पुण्य का संचय सुख का कारण होता है।

—धम्मपद

महावीरा

भगवान महावीर के जीवन, दर्शन व सिद्धांत पर आधुनिक चिन्तन

☐ **सम्पादन मण्डल**

डा० नरेन्द्र भानावत
तिलकराज जैन
किशनचन्द जैन

/

श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मन्दिर

आदर्श नगर, जयपुर

□ प्रकाशक
श्री मुलतान जैन श्वे० सभा
आदर्श नगर, जयपुर

□ मुख पृष्ठ
मोहनसिंह

□ प्रतियां
1000

□ प्रकाशन वर्ष
1982

□ मुद्रक
आनन्द प्रिंटको
गोपालजी का रास्ता, जयपुर
फोन 65866, 72858 निवास 75289

क्षमा मूर्ति का उपसर्ग में समता भाव

वीतरागी परम तीर्थंकर भगवान महावीर

'महावीरा' स्मारिका

अनुक्रमणिका

साहित्यिक संभाग

मुलतान शहर (पाकिस्तान) में मन्दिर

मुलतान शहर के चूडी सराय बाजार स्थित श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर
के अन्तरंग भव्य दृश्य में तीनों ओर मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान

मुलतान स्थित मन्दिर के शिखर का दृश्य
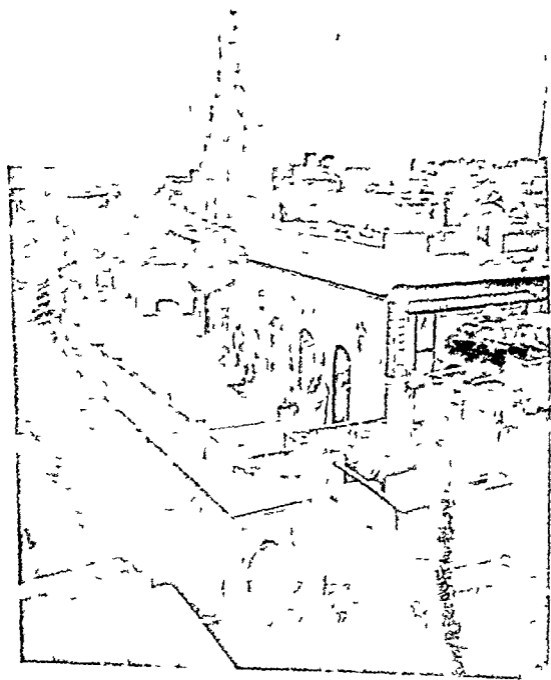
मुलतान शहर (पाकिस्तान) में स्थित श्री जैन श्वे० मन्दिर के शिखर का भव्य दृश्य नगर के किसी भी कोने से देखा जा सकता था

'महावीरा' प्रकाशन
पर प्राप्त आशीर्वचन

अरिहंत भगवंत को नमस्कार हो।

सिद्ध भगवंत को नमस्कार हो।

आचार्य महाराज को नमस्कार हो।

उपाध्याय महाराज को नमस्कार हो।

ढाई द्वीप में रहे हुए सब साधुओं को नमस्कार हो।

परम पूज्य दादा गुरुदेव
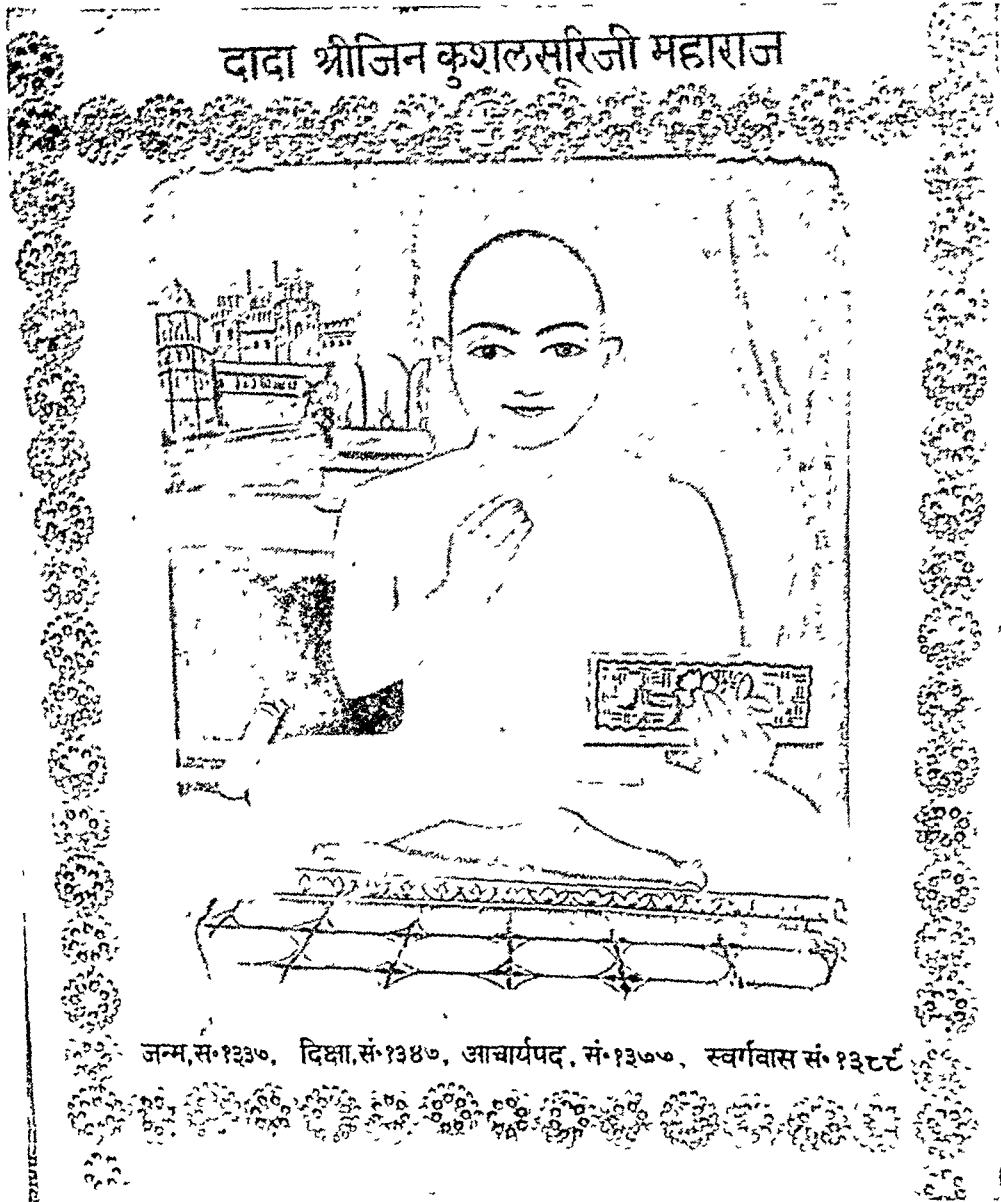
श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज

परम उपकारी गुरुदेव की धर्मदेशना से लाखों मानवों ने मांस, शराब आदि व्यसनों को छोड़ कर वीतराग जिन धर्म को अङ्गीकार कर अपने मानव जीवन को सफल बनाया ।

श्री महावीर जैन श्वे० मन्दिर का भूमि पूजन
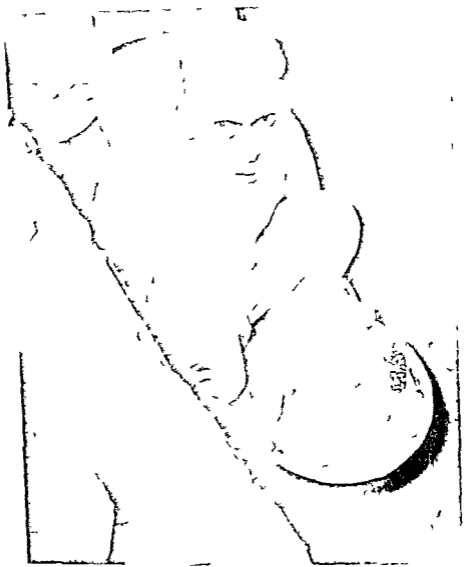
महान् तपस्वी धर्मनिष्ठ श्री अमरचन्दजी नाहर द्वारा
मन्दिर निर्माण से पूर्व भूमि पूजन

मालीवाडा
देहली–110006

यह जान कर प्रसन्नता का अनुभव हुआ कि श्री महावीर जैन श्वे. मंदिर, आदर्श नगर द्वारा "महावीरा" स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

इस समय विश्व को जैन-चिन्तन की सख्त जरूरत है। विश्व की भट्टी में न्यूट्रान बम आदि ईंधन द्वारा हिंसा की जो आग सुलग रही है, जैन दर्शन ही एक ऐसा दर्शन है, जो अपने स्याद्वाद, नयवाद आदि सिद्धान्तों के द्वारा उसे ठंडा करने में सक्षम है।

मैं आशान्वित हूँ कि प्रस्तुत प्रकाशन विश्व को एक मौलिक सन्देश देगा, अहिंसा की अनुपम प्रेरणा देगा, अपरिग्रह की भावना को सींचेगा।

इसी आशा तथा इन्हीं शुभकामनाओं के साथ–

मुनि कान्तिसागर

पुरी

मुझ यह जानकर वहुत प्रसन्नता हुइ कि भगवान महावीर क निवाण दिवस पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझ पूण आशा है कि स्मारिका प्रकाशन में निश्चित रूप स विश्व वद्य महावीर क जीवन, दशन व चितन पर विशिष्ट व शाधपूर्ण सामग्री का सकलन हागा।

भगवान महावीर क दिव्य सदश की आज पूव स भी अधिक महत्ता व आवश्यकता है। सम्पूण विश्व आज हिसा क कगार पर खडा है। हर राष्ट्र अपनी सुरक्षा क लिय चितित है हर प्राणी आज अपन आप में पूण अशात है। जीवन में कहीं सुख और शांति दूर दूर तक दिखाइ नहीं द रही। एस समय में उन क महान सदश का जन जन तक पहुचाना शुभ काय है जिस स वास्तविक सुख क्या है और कहा है? इस का लाग समझ सक।

मुझ आशा है आप जैसा उत्साही युवा वग इस काय को वहुत ही अच्छ ढग स सम्पन्न कर सकगा। सफलता क लिय मरी शुभ कामनायें।

आचार्य सूर्योदय सूरीश्वर

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आप दीपावली पर एक सुन्दर स्मारिका प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें भगवान महावीर एवं जैन दर्शन पर विद्वानों के लेखादि होंगे। आपकी योजना स्तुत्य हैं।

भगवान महावीर के बताये हुए रास्ते से आज हम लोग भटक गये हैं। उन के चिंतन को जीवन में ईमानदारी से उतारने की आज अधिक आवश्यकता महसूस की जा रही हैं। विशेषतः बुद्धिजीवियों के लिये आपकी स्मारिका दिशा सूचक व प्रेरणादायी होगी, ऐसी आशा हैं।

इस पुनीत कार्य के लिए शुभाशीर्वाद।

विजयेन्द्र दिन्न सूरि
(इन्द्र सूरि)

दवाधिदव अरिह त परमात्मा क परम उपासको का आराध्य स्थान बनाना जरूरी इसलिए हैं कि जगत क अ दर आय क्षत की सर्वोपरि सत्ता का आलम्बन अरिह त चैत्य विना हाना सम्भव नहीं, जैस–दूध दिना घी नहीं, प्रम विना दूध नहीं। आत्मार्थी जीवन क अ दर अन तानुब धी आदि सात प्रकतियो का क्षय करने का कारण याने सम्यग दशन का मूल हतु हाव तो जिन चैत्यजिनालय हैं।

इस लिए पुण्यव त प्राणी इस भव मे या पर भव मे की हुइ तपश्चया, उसकी अनुमोदना क निमित्त जिन म दिरो को बनान वाल को जिस प्रकार स सहायक हो सक वह अपना परम आत्म कतव्य समझ कर सहायक बनना जरूरी समझ।

इस भावना को मुत्त रूप दने क लिय स्मारिका महावीरा का प्रकाशन किया जा रहा हैं यह वस्तुत प्रसन्नता का विषय हैं। इसकी सफलता क लिय मरी शुभकामनायें।

आचार्य विजय ह्रींकार सूरी म०

कोयम्बटूर

भगवान महावीर सर्वज्ञ थे। उनका दिया उपदेश आज भी सर्वथा सत्य, सबके लिए हितकारी व इस आधुनिक जीवन में समन्वयवादी हैं।

आधुनिकता के नाम पर हम पतिदिन अपने मूल उद्देश्यों से दूर होते जा रहे हैं। जीवन में सुख, शांति व समृद्धि के लिए भगवान महावीर के सदेश व उपदेशों की आज पहले से भी अधिक आवश्यकता हैं।

आशा हैं कि इस निष्कर्ष की पुष्टि स्मारिका द्वारा करेंगे तथा जन-जन तक वीतरागी भगवान महावीर के उपदेशों को पहुचाने के प्रयास में सफल होंगे।

विक्रमसूरि

'अणुव्रत विहार'
210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली-110 002

'महावीरा' अपने नाम से ही महावीर की स्मृति को ताजा कर देती है। आप लोग इस दृष्टि से सुन्दर प्रयत्न कर रहे हैं। इस अवसर पर मैं आपसे तथा आप लोगों के माध्यम से समस्त जैन समाज को सुझाव देना चाहता हूं कि इस परम्परा में आज जो एक ठहराव आ गया है, उसे तोड़ने का प्रयास करें। वास्तव में जैन धर्म बहुत गतिशील धर्म है। वैसे धर्म के साथ गति का सम्बन्ध होता ही है पर जैन धर्म ने इस दिशा में उच्चतम मानदण्ड स्थापित किए हैं। इसीलिए इस धर्म परम्परा में आज जो स्थिति-सीमा बन गई है, वह अखरती है। सबसे पहली आवश्यकता है इस ठहराव को समझा जाए। फिर आवश्यकता है कि इस परम्परा में जो सही गतिशील तत्व हैं, उनके हाथ मजबूत किए जाएं। आज गतिशीलता पर स्थितिशीलता हावी हो रही है। यदि इसे बदला जा सके तो इस परम्परा की ही बहुत बड़ी सेवा नहीं होगी अपितु राष्ट्र और मानव मात्र की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

आचार्य तुलसी

ीरायतन

राजगृह,
नालन्दा, बिहार

श्रमण भगवान महावीर के पावन निर्वाण पर्व दीपावली पर 'महावीरा' के पुनीत नाम से, भगवान की पुण्य-स्मृति में जो विराट स्मारिका ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, तदर्थ हार्दिक साधुवाद ।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों की उपयोगिता देशातीत एवं कालातीत हैं, अतः वह आज भी हर काल और जन के लिए उपयोगी हैं । उनकी धर्म देशना में सर्वोदय का सर्व मंगल उद्घोष अनुगुंजित है । मानवता के सभी पक्षों के विकास की चिरपरिक्षित साधना पद्धति महाप्रभु के सन्देशों में सहज सुलभ हैं । अतः अपेक्षा हैं, परस्पर के अन्तर्द्वन्द्वों, सवर्षों एवं विग्रहों से कलुषित होते आज के युग में उन्हें सर्वजनहिताय, सर्वजन कल्याणाय प्रचारित किया जाय ।

आपके द्वारा प्रकाशित होने वाली स्मारिका इसी दिशा में प्रकाशमान हो रही हैं । अतएव मैं आपके उक्त शुभ आयोजन की सफलता के हेतु प्रभुचरणों में अभ्यर्थनानुरत्त हू ।

उपाध्याय अमर मुनि

'लालबाग'
शाही बाग
अहमदाबाद

भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक के द्विपोत्सवी के महापर्व के दिन, श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मंदिर, आदर्श नगर जयपुर द्वारा जैन दर्शन धर्म व सिद्धांत पर आधुनिक चिंतन के उद्देश्य से महावीरा नामक स्मारिका प्रकाशित होने वाली है, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

मैं आशा करता हूं कि यह स्मारिका जैन तत्वज्ञान, धर्म इतिहास साहित्य कला आदि विषयों पर प्रकाश डाल सके ऐसे अभ्यासपूर्ण, सरल व मधुर भाषा के लेखों एवं चित्रों से समृद्ध बनेगी और जैन संघों की एकता तथा शुद्धि को बढ़ावा दे सके, ऐसी सामग्री भी उसमें प्रकाशित की जायगी।

मैं आपके इस प्रयत्न की सफलता चाहता हूं।

श्रेणिक क लालभाई

राज्यपाल, राजस्थान

राज भवन
जयपुर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मन्दिर, आदर्श नगर, जयपुर द्वारा भगवान महावीर के पावन निर्वाण दिवस 'दीपावली' पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है जिसमें भगवान महावीर के निर्वाण तथा साधना, चिन्तन, सिद्धान्त व दर्शन चर्चा के साथ-साथ राजस्थान के ऐतिहासिक तीर्थ, मन्दिर व शास्त्र संग्रह निधि पर भी प्रकाश डाला जावेगा।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों को जीवन में आत्मसात कर जन साधारण तक पहुंचाना अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। इससे समाज में व्याप्त बुराइयां भी दूर हो सकेंगी तथा राष्ट्र की कई समस्याओं का समाधान खोजने में सहायता मिलेगी।

इस अवसर पर मैं अपनी शुभकामनाए प्रेषित करता हूं कि यह स्मारिका अपने लक्ष्यपूर्ति में सफल सिद्ध होगी।

कल्याणदत्त शर्मा

राज्यपाल
गुजरात

राज भवन
गांधी नगर-382 020

यह जानकर खुशी हुई कि श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मन्दिर, आदर्श नगर, जयपुर द्वारा जैन दर्शन पर आधारित एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

स्मारिका की सफलता के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएं भेजती हूं।

शारदा मुकर्जी

हरियाणा राज्यपाल

हरियाणा राजभवन,
चण्डीगढ़

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मन्दिर, जयपुर भगवान् महावीर के निर्वाण दिवस पर एक स्मारिका प्रकाशित कर रहा है।

भगवान् महावीर एक महान आत्मा थे जिन्होंने अपनी दिव्य वाणी के उपदेश से न केवल सतप्त एव पीडित मानवता को शान्ति प्रदान की बल्कि ऐसी ज्योति प्रज्वलित की जो युगों तक अन्धकार में भटकती मानव जाति के पथ को आलोकित करती रहेगी।

इस स्मारिका के माध्यम से भगवान महावीर का दिव्य संदेश अधिक लोगों तक पहुच पाये, यही मेरी इस अवसर पर शुभ कामना है।

ग. द. तपासे

GOVERNOR

RAJ BHAVAN
GANGTOK
SIKKIM

All religions are centered around good thoughts good words and good deeds Unity among religions with these common objectives should be an ideal of society and of humanity

Jainism is one of the important religions of the world like many others In our country we have perhaps the largest number of religions with different philosophies but with the power of faith in one God Without that power of spiritualism which India is endowed with we would not have been able to overcome so many hurdles and hardships in our history and come out triumphantly in the pursuit of peace and welfare for our people

Faith and Spiritualism alone cannot deliver the goods but they strengthen the determination to do good So on the auspicious occasion of Diwali and New Year let us pray that humanity will be saved from the clutches of cruelty and suffering and will enjoy the gains of good ness and goodwill with tolerance and mercy without malice and avorice

HOMI J H TALEYARKHAN
GOVERNOR OF SIKKIM

मुख्य मन्त्री

हिमाचल प्रदेश
शिमला-171002

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि श्री महावीर जैन श्वे0 मन्दिर, आदर्श नगर, जयपुर द्वारा भगवात महावीर के पावन निर्वाण दिवस 'दीपावली' पर जैन दर्शन पर आधारित एक भव्य तथा अनूठी स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

मुझे इस बात की और भी प्रसन्नता है कि इसमें भगवान महावीर के निर्वाण, तप तथा ऐतिहासिक तीर्थ, शास्त्र तथा सग्रह निधि पर सामग्री प्रकाशित की जायेगी, जिस से समाज के सभी वर्ग लाभान्वित होंगे।

मैं इस अवसर पर अपनी शुभ कामनाएं भेजता हू।

रामलाल

राज्य मन्त्री
खनिज, गृह एवं उद्योग

जयपुर
राजस्थान

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री महावीर जैन श्वेताम्बर मन्दिर आदर्श नगर, जयपुर द्वारा भगवान महावीर के निर्वाण दिवस पर एक स्मारिका 'महावीरा' का प्रकाशन किया जा रहा है।

आधुनिक भौतिक युग में मानव के उत्पीड़न असन्तोष एवं अशा[illegible] समाप्त कर उत्तम चरित्र निर्माण की प्रमुख आवश्यकता है। इस में [illegible] महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त व आदर्श इन अवगुणों के उन्मूलन में [illegible] सिद्ध हो सकते हैं।

आशा है इस स्मारिका के माध्यम से य[illegible]दर्श व सिद्धान्त जनसाधारण तक पहुंचेंगे।

मैं इस अवसर पर अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं प्रकट करता हूं।

प्रद्युम्नसिंह

अपने बारे में

'महावीरा' का प्रकाशन एक पवित्र उद्देश्य को ले कर किया जा रहा है—इस लिये आत्मचिन्तन में यह विचार बराबर आता रहा कि अन्य स्मारिकाओं की तरह इसका सीमांकन भी केवल विज्ञापन बटोरने तक ही सीमित न रह जाये। इसीलिये इस में प्रकाशित चयनित सामग्री में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि लेख अधिक लम्बे न हों, पर उन में व्यक्त विचार ठोस, संतुलित, शोधपूर्ण और उपयोगी हों। भगवान महावीर के जीवन दर्शन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर इस में खुले विचार मन्थन में जीवन के विभिन्न पहलुओं को विविध कोणों से देखने का सुन्दर अवसर मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी लिये भगवान महावीर के जीवन दर्शन, प्रसंग, चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में जैन दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान डा. नरेन्द्र भानावत के दिशा निर्देश में रचनाओं का चयन किया गया है। इस में सभी विद्वजनों ने बहुत ही शोध पूर्ण लेखों, प्रभावशाली प्रसगों, मन की गहराइयों को छूते काव्य पाठों से हमें उपकृत किया हैं। इस आत्मीय सहयोग के लिये सभी साधुवाद के पात्र हैं।

'महावीरा' में प्रकाशित विज्ञापन केवल संस्थान के परिचय तक ही सीमित नहीं हैं। बल्कि हर विज्ञापित पृष्ठ पर प्रकाशित जीवन की गहराईयों को छूती हुई सूक्तिया जीवन सम्बन्धी एक एक बहुमूल्य अनमोल मोती आपके समक्ष प्रस्तुत करेंगी। पता नहीं कौन सा अनमोल मोती आप के गले का हार बन कर आपके जीवन की दिशा मोड़ दे। जीवन की विषम गहन परिस्थितियों में आम मानव को 'शांति व आत्म सुख' की प्राप्ति मृगतृष्णा के रूप में छल रही है। इतना ही नहीं दूर दूर तक आत्मचिन्तन के संतोष का अंश भी प्राप्त नहीं हो पा रहा-ऐसे समय में चिन्तन की गहराइयों से निकले यह अनमोल मोती अवश्य ही हमें दिशाबोध व जीवन में एक नई प्रेरणा देंगे—ऐसी मेरी मान्यता है।

'महावीरा' के सम्पादन में यद्यपि इस बात का हृदय से प्रयास किया गया है कि कम से कम स्थान में अधिक से अधिक ठोस व उपयोगी सामग्री दी जाये। फिर भी संभव है कि इस में अनेकों त्रुटियां रह गई हों। साथ ही इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि स्मारिका प्रकाशन में विज्ञापन का रचनाओं से भी अधिक भार होता है और उसे कम भी नहीं किया जा सकता, फिर भी कुछ विचार मन्थन के लिये उपयोगी सामग्री मिल जाये तो अवश्य ही आत्म संतोष मिलता है।

'महावीरा' के सम्पादन व प्रकाशन में समय समय पर डा. नरेन्द्र भानावत व श्री किशनचन्द जैन से मुझे अपार सहयोग और दिशा निदेश मिला है, उस के लिये मैं उनका अन्तःस्तल से बहुत ही कृतज्ञ हूं। मुद्रण में किन्हीं भी कारणों से हुई देरी के लिये मैं क्षमा याचक हूं।

'महावीरा' के सम्पादन में किसी प्रकार की रही त्रुटियों के लिये क्षमा चाहते हुए अपने उन सभी सहयोगियों के प्रति जिन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निरन्तर सहयोग मिलता रहा है, अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूं।

आप सभी से जो अपार स्नेह, सहयोग व मार्ग दर्शन मिला, उस सब के लिये पुनः धन्यवाद।

तिलकराज जैन
सम्पादक व सचिव
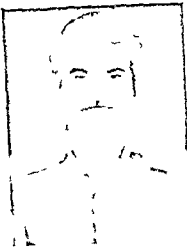
आभार

'महावीरा' आपके हाथों में है-कैसी बन पड़ी है, यह तो आप ही बता सकते हैं। हमारी भूमिका इस सम्बन्ध में पूर्ण रूप से तटस्थ है। इतना अवश्य है कि इस के प्रकाशन की सब से अधिक प्रसन्नता मुझे है। न केवल इसलिये कि इसकी चयनित सामग्री व बाह्य साज सज्जा व आवरण से मुझे सन्तुष्टि है बल्कि इस लिये भी कि स्मारिका प्रकाशन का जो वृहद भार मेरे कन्धों पर डाला गया था जिसे वस्तुतः मैंने बहुत हिचकिचाहट के साथ स्वीकार किया था, आज उस जिम्मेदारी को पूर्ण होते देखने का आत्म सुख व सन्ताप मिल रहा है।

'महावीरा' प्रकाशन की योजना का मूल प्रेरणा स्रोत आदर्श नगर स्थित निर्माणाधीन जयपुर का प्रथम त्रिशिखरबद्ध श्री महावीर जैन श्वे० मंदिर रहा है। जिसके निर्माण की गति कुछ समय से कई कारणों से जिन में अर्थाभाव मुख्य है, निरन्तर घटती चली जा रही थी। इसी भव्य मंदिर के निर्माण को गतिशील बनाने के लिये सुन्दर व उपयोगी स्मारिका प्रकाशन का जो स्वप्न कुछ माह पूर्व आया था आज वह साकार हो रहा है।

यद्यपि यह हमारा प्रथम प्रयास है और इसे सुन्दर और उपयोगी बनाने हेतु हमारा प्रारम्भ से ही निरन्तर प्रयास रहा है फिर भी इस में त्रुटियां सम्भव है। इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। किसी कार्य को करने में कई प्रकार की कमियां रह सकती है और यह प्रकाशन भी इस का अपवाद नहीं है। इतना अवश्य कह सकता हूं कि यदि कुछ भी अच्छा बन पड़ा हो तो उस का सम्पूर्ण श्रेय विद्वान लेखकों की उपयोगी रचनाओं का है सम्पादक मंडल के निष्ठापूर्वक श्रम का है, विज्ञापनदाताओं व उदार हृदय से दिये गये आर्थिक सहयोग का है, पर उन सभी सहयोगियों व कार्यकर्ताओं का है जिनके सक्रिय व आत्मीय सहयोग के अभाव में यह अनमोल प्रकाशन इस रूप में सम्भव नहीं था। इन सब के प्रति हृदय के अन्तःकरण से बहुत बहुत आभार प्रकट करता हूं।

महावीरा प्रकाशन में किन्हीं अपरिहार्य कारणों से न चाहते हुए भी थोड़ा विलम्ब होता रहा। चार माह से भी अधिक समय के विद्युत संकट ने तो इस कार्य को एकदम ठप्प सा ही कर दिया था। समय समय पर अन्य कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ा। इन सब कारणों से जो भी विलम्ब हुआ उसके लिये तथा प्रकाशन में किसी भी प्रकार की कमियां रह गई हो उस सब के लिये मैं आप सभी से क्षमा प्रार्थी हूं।

पुनः आप सभी के सहयोग के प्रति हृदय से आभार प्रगट करता हूं। आशा है भविष्य में भी मुझे आपका आत्मीय प्रेम व सहयोग निरन्तर मिलता रहेगा।

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ

किशनचन्द जैन
संयोजक

श्री मुलतान जैन श्वेताम्बर सभा
जयपुर

कार्यकारिणी

1.	श्री तिलोकचन्दजी सिंघी	अध्यक्ष
2.	श्री राजकुमारजी सिंघी	उपाध्यक्ष
3.	श्री आत्मारामजी जैन	मंत्री
4.	श्री सुरेशकुमारजी बैगानी	संयुक्त मंत्री
5.	श्री चम्पालालजी बैगानी	कोषाध्यक्ष
6.	श्री हंसराजजी	सदस्य
7.	श्री दीनदयालजी जैन	,,
8.	श्री राजकुमारजी सिंघवी	,,
9.	श्री चन्द्रप्रकाशजी बैगानी	,,
10.	श्री शान्तिलालजी जैन	,,
11.	श्री सुरेन्द्रकुमारजी	,,
12.	श्री प्रीतमलालजी जैन	,,
13.	श्री जवाहरलालजी	,,
14.	श्री विजयकुमारजी	,,
15.	श्री सुरेन्द्रकुमारजी नाहटा	,,
16.	श्री चन्द्रप्रकाशजी सिंघी	,,

स्मारिका प्रकाशन समिति

1.	श्री किशनचन्द जैन	संयोजक
2.	श्री तिलकराज जैन	सचिव
3.	श्री चन्द्रप्रकाश बैगानी	कोषाध्यक्ष
4.	श्री आत्माराम जैन	सदस्य
5.	श्री चन्द्रप्रकाश सिंघी	सदस्य

मन्दिर निर्माण समिति

1	श्री घनश्यामदासजी जैन	संयोजक
2	श्री किशनचन्दजी जैन	सदस्य
3	श्री राजकुमारजी सुराणा	"
4	श्री चन्द्रप्रकाशजी वैगानी	"
5	श्री शान्तिलालजी जैन	"
6	श्री दिनेशकुमारजी	"
7	श्री चन्द्रप्रकाशजी बेगानी	"
8	श्री तिलकराजजी जैन	"
9	श्री राजकुमारजी सिंघी	"

श्री महावीर महिला मंडल
जयपुर

1	श्रीमती कमला सिंघी	अध्यक्ष
2	श्रीमती शान्तिदेवी सिंघी	उपाध्यक्ष
3	श्रीमती निर्मला जैन	मंत्री
4	श्रीमती राजकुमारी सिंघी	संयुक्त मंत्री
5	श्रीमती चन्द्रप्रभा वेगानी	कोषाध्यक्ष
6	श्रीमती सरिता जैन	सदस्य
7	श्रीमती सुधा बोहरा	सदस्य
8	श्रीमती रेखा जैन	सदस्य
9	श्रीमती इंदिरा सिंघी	सदस्य

श्री मुलतान जैन श्वे० सभा की कार्यकारिणी

(बैठे हुए बाये से) सर्व श्री तिलकराज जैन (सम्पादक), चन्द्रप्रकाश बेगानी (स्मारिका कोषाध्यक्ष) किशनचन्द जैन (सयोजक स्मारिका), त्रिलोकचन्द सिघवी (अध्यक्ष), राजकुमार सिघी (उपाध्यक्ष), आत्माराम जैन (सचिव), चम्पालाल जैन (कोषाध्यक्ष), सुरेशकुमार बेगानी (सयुक्त सचिव),

(खडे हुए बाये से) सर्व श्री राजकुमार सिघी, चन्द्रप्रकाश सिघी, राजकुमार सुराना, प्रीतमलाल जैन हंसराज जैन, विजयकुमार, सुरेन्द्रकुमार नाहटा

श्री महावीर महिला मण्डल
आदर्श नगर, जयपुर
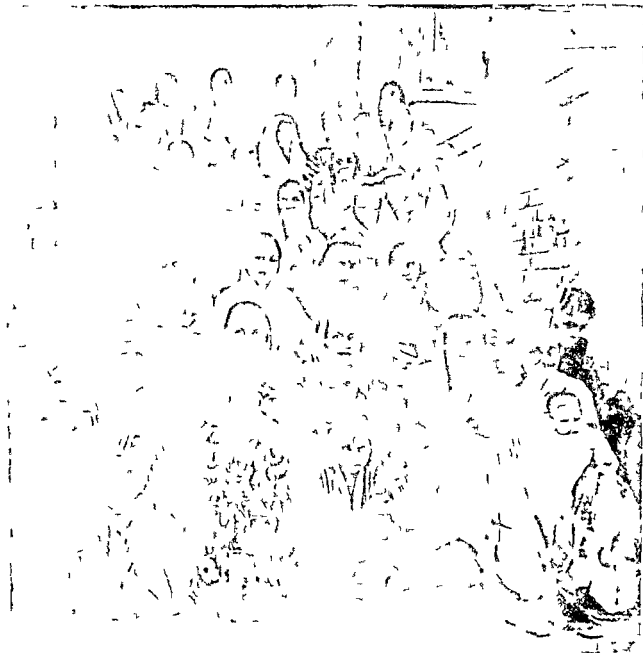
पदाधिकारी व सदस्यगण

'महावीरा' का
साहित्यिक संभाग
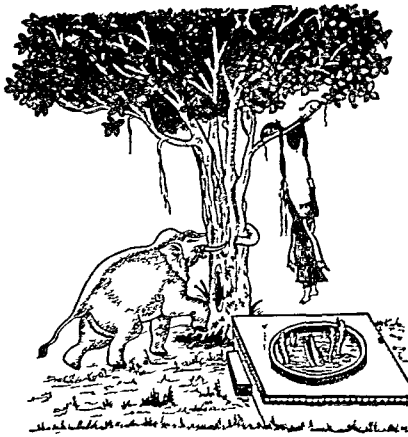
ससार रूपी वक्ष मे मनुष्य दो डाल पकड हुए लटक रहा हैं दिन और रात रूपी चूह प्रतिक्षण डाल काट रह हे काल रूपी हाथी ता न मालूम कब इस वक्ष का उखाड फेंक ? विषय सुख रूपी मधु म लिप्त जीव कुछ और मधु रस क आनन्द की चाह म नीच क नरक और तिदच रूपी कुए की परवाह भी नहीं कर पा रहा । इस भयकर स्थिति स बचन क लिए हम काम क्राध लोभ माह और अहकार का छोड कर धम की आर अग्रसर हो एव समता तथा क्षमा भाव रख ।

महावीर की प्रेरक जीवन - घटना

●

वर्षीदान

□ आचार्य श्री जिनेन्द्र सूरि

वडा उपाश्रय, रागडी चौक, बीकानेर

धन-दौलत से मनुष्य को कभी तृप्ति नही होती और विना तृप्ति के शाति नही मिलती। जिसके पास जितना है, वह उससे और अधिक चाहता है। धन से असतुष्ट हजारपति लक्षाधिपति वनने की कामना करता है तो लक्षाधिपति कोठयाधीश वनने की। इसलिए कि होना बुरा न होते हुए भी असन्तोष उसे बुरा वना देता है। असन्तोष की अमीरी अभिशाप से ग्रस्त हो जाती है। उसे वरदान बनाये रखने का अमोघ मन्त्र है—विवेकपूर्वक दान। भगवान् महावीर ने इसे 'वर्पीदान' के रूप में आचरण का विषय बनाया

माता-पिता की मत्यु के पश्चात् वर्द्धमान महावीर बड़े भाई के अनुरोध पर दो वर्प और गृहस्थावस्था मे रहना स्वीकार कर लेते है। पर, इस अवधि मे वे पूर्ण निस्पृह वृत्ति को ही अपनाते है। सदा आत्म ध्यान मे तल्लीन रहना, जमीन पर लेटना, निर्दोष आहार करना आदि उनकी दिनचर्या बन जाती है। भाई से की हुई प्रतिज्ञा का एक वर्ष रह जाने पर वर्द्धमान महावीर प्रतिदिन 1 करोड़ 8 लाख स्वर्ण (सिक्का विशेष) का दान करते है। उनका यह दान 'वर्षीदान' कहा जाता है। जिसका शाब्दिक अर्थ भी 'एक वर्प तक दान देना' होता है।

जैन इतिहास मे तीर्थकरो की यह परम्परा है कि वे दीक्षा से पूर्व वर्पीदान देते है। इस परम्परा के प्रचलन मे सामाजिक आरोह-अवरोह कारण है और ध्येय है दारिद्रय-निवारण। भगवान महावीर ने भी यह परम्परा इसो सन्दर्भ में पूरी की।

साधना का मार्ग पूर्ण त्याग का मार्ग है। त्यान भी वैसा, जिसमे किसी वस्तु पर 'मेरा' का बोध न हो। जो अपने गहरे अन्दर मे आत्मा के अतिरिक्त किसी पर 'मेरा' की मोहर लगाये हुए है, उसका त्याग एक

टरोमला है। भगवान् महावीर ने इसी 'मेरा' को हटाने की साधना पहले की और वस्तु विसर्जन बाद में किया। क्योंकि परिग्रह ममत्व है न कि वस्तु (दश वैकालिक ६।२१) ममत्व के रहते किसी वस्तु को छोड़ना अविवेक, क्लेश और अभिमान का जनक होता है और ममत्व के रहते आवश्यक वस्तुओं का संग्रह असम्भव है, क्योंकि अधिक वस्तुयें इकट्ठी करना लोभ का परिणाम है। (दशवै० ६।१६)

भगवान महावीर ने वर्षीदान दिया, यह एक घटना हुई, किन्तु इसमें हमारा मार्गदर्शन भी है। दान कैसे दिया जाय? इस प्रश्न का समुचित उत्तर इसी की गहराई में खोजने पर मिलता है।

धन का गुलाम बनकर दान नहीं दिया जाता। धन की गुलामी करने वाले व्यक्ति को कुछ देते हुए अन्तर्हृदय पर गहरी चोट लगेगी। या तो वह दुखित होगा अथवा दिये हुए पर 'मेरा' शब्द अंकित करेगा। इसीलिए दान देने से पूर्व धन की गुलामी से पिंड छुड़ाना है, क्योंकि उसकी अधीनता में रहने में न्याय-अन्याय का कोई भान नहीं रहता। ऐसे ही व्यक्ति बेईमानी, मिलावट, करचोरी, झूठ, कम माप करना आदि बुराईयों में फंसते हैं। कल्पना कीजिए, आपके पास एक नौकर है। वह नौकर आपका काम करने के बदले आपसे ही अपनी सेवा न यानी आपकी वह सेवा करे इसके बदले उसकी सेवा आप करें तो आप यही कहेंगे—नौकर क्या रखा है, मैं ही इसका नौकर बन गया। बस! यही बात धन और आपके बीच में है। यदि धन से कुछ कर गुजरने की इच्छा है, तो उसका स्वामी होने पर ही काम होगा।

'मेरे लिए धन है और मैं धन के लिए नहीं हूं' यह भावना दान का पहला लक्षण है। इससे तज्जन्य अभिमान पर स्वतः विजय हो जाती है। 'दानं संविभाग' लक्षण-सूत्रानुसार 'समान वितरण' भी दान का एक लक्षण है। सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखकर समान स्तर पर दान होना चाहिए अन्यथा 'अंधा बांटे रेवड़ी फिर-फिर अपने को दे' की लोकोक्ति ही चरितार्थ होगी। अपनी आंखों पर किसी सम्प्रदाय का चश्मा लगाने से भी दान की वास्तविकता को नहीं पाया जा सकता।

धन की कमी भी समाज में असमानता के व्यवहार को उत्पन्न कर देती है। अधिकांश समृद्ध दरिद्रों को तुच्छता से देखते हैं। उनकी बात अनसुनी कर देते हैं। राजसी महल में बैठे व्यक्ति और रोटी के लिए भी पराधीन व्यक्ति में प्रेम, दूसरे के दारिद्र्य दूर करने पर ही सम्भव है। सामाजिक दृष्टि से दान देने का प्रयोजन दरिद्रों के दुःख को दूर करने का होना चाहिये। कहा जाता है कि महावीर के वर्षीदान से राज्य में प्रायः कोई दीन-दरिद्र न रहा।

भगवान महावीर के जीवन में वर्षीदान गृहस्थ और साधु जीवन के बीच की कड़ी है। 'ममत्व' पर पूर्ण विजय प्राप्त करके वर्षीदान देना, एक प्रेरणादायी घटना है। उनके २५०७ वीं निर्वाण शती पर ऐसी घटनाओं को जनकल्याणकारी रूप में समझाने की आवश्यकता है।

□

जैन धर्म और त्याग

जैन धर्म का त्याग वासनाओं का त्याग है। जैन धर्म त्याग के लिए अग्नि में जिन्दा जल जाने को नहीं कहता, गंगा या यमुना में डूब मरने का नहीं कहता, पहाड़ की ऊंची चोटियों से कूद जाने या बर्फ में गलकर मर जाने को नहीं कहता। भूख, प्यास, सरदी, गरमी सह लेना भी कोई त्याग नहीं है। यह त्याग तो अनेक अपराधी जेलखाने के कैदी भी कर लेते हैं। अपने आप को कामनाओं के जाल से मुक्त कर लेना ही सच्चा त्याग है। त्यागी के लिए जीवन या मरण महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है, कामना रहित हो जाना।

—कामना रहित हो जाना

एक चिन्तन

तीर्थ महावीर का जीवन घटना प्रधान क्यों नहीं ?

□ डॉ० हुकम चन्द भारिल्ल
टोडरमल स्मारक भवन, बापू नगर, जयपुर

भगवान महावीर का पच्चीस सौवा निर्वाण वर्ष छः वर्ष पूर्व बडे ही उत्साह से सर्वत्र मनाया गया। प्रत्येक क्षेत्र में आशातीत कार्य हुए। महावीर के जीवन और सिद्धान्तो का विवेचक साहित्य भी विपुल मात्रा मे सामने आया। जिसमे प्राचीन महावीर चरित्रों और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो के विवेक ग्रन्थों का प्रकाशन तो हुआ ही, नवीन साहित्य-निर्माण भी कम नही हुआ। इन सवकी पृष्ठ-भूमि मे एक तथ्य बहुत तेजी से उभरा कि महावीर का जीवन घटना प्रधान नही है, विशेषकर दिगम्बर साहित्य मे। इस कारण महावीर के जीवन पर लिखने वालों ने एक कठिनाई अनुभव की—घटनाओ के अभाव में महावीर के चरित्र को कैसे प्रस्तुत किया जाय, कैसे उभारा जाय ? तदर्थ अनेक दिशाओ मे गहराई से विचार-विमर्श हुआ। कुछ विद्वानो ने सलाह दी कि यदि दिगम्बर-साहित्य मे घटनाये नही मिलती, तो क्यो न अन्यत्र से आयात करली जाय या कल्पना से गढली जाय और ऐसा हुआ भी बहुत। पर इस दिशा मे विचार नही किया गया कि आखिर महावीर का जीवन घटना-प्रधान क्यो नही है ? उनके जीवन मे घटनाओ के अभाव के भी तो कुछ कारण हो सकते है। कुछ लोगो का कहना यह भी रहा कि वे आखिर 72 वर्ष तक जिये, तो उनके जीवन मे कुछ न कुछ घटा ही होगा, पर दिगम्बराचार्यो ने उसके सम्बन्ध मे उल्लेख नही किया। यदि यही सत्य है तो इस दिशा मे विचार होना चाहिए कि दिगम्बराचार्यो ने ऐसा क्यों किया, न कि उनकी कमी या भूल मानकर उसकी पूर्ति या भूल-सुधार कल्पनाओ के आधार पर कर लिया जाय।

जब-जब यह कहा जाता है कि महावीर का जीवन घटना-प्रधान नही है, तब उसका आशय यही होता है कि दुर्घटनाये प्रधान नही है, क्योकि तीर्थकर के जीवन में आवश्यक शुभ घटनाये तो पंचकल्याणक ही है, वे

तो महावीर के जीवन मे घटी ही थी ।

दुघटनाए या तो पाप के उदय से घटती हैं या पाप के भाव के कारण । जिसके जीवन मे न पाप का उदय हो और न पाप भाव हो, तो फिर दुघटनाए घटेगी कैसे, क्यो घटगी ? अनिष्ट सयोग पाप के उदय के बिना सभव नही है तथा वैभव और भोगो मे उलझाव पाप भाव के बिना असम्भव है । योग के भावरूप पाप-भाव के सद्भाव मे घटने वाली घटनाओ मे शादी एक ऐसी दुघटना है जिसके घट जाने पर दुघटनाओ का एक कभी न समाप्त होने वाला सिलसिला आरम्भ हो जाता है । सौभाग्य से महावीर के जीवन मे यह दुघटना न घट सकी । एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना-प्रधान नही है ।

लोग कहते हैं कि बचपन मे किसके साथ क्या नही घटता, किसके घुटने नही फूटते, किसके दात नही टूटते ? महावीर के साथ भी निश्चित रूप से यह सब कुछ घटा ही होगा, भले ही आचार्यों ने न लिखा हो । पर भाई साहब । दुघटनाए बचपन से नही, बचपने से घटती है महावीर के बचपन तो आया था पर बचपना उनमे नही था । अत घुटने फूटने और दात टूटने का सवाल ही नही उठता । वे तो बचपन से ही सरल, शात एव चितनशील व्यक्तित्व के धनी थे । उपद्रव करना उनके स्वभाव मे ही न था और बिना उपद्रव के दात टूटना, घुटने फूटना सम्भव नही ।

कुछ का कहना यह भी है कि न सही बचपन मे, पर जवानी मे तो कुछ न कुछ घटा ही होगा । पर बन्धुवर । जवानी मे दुघटनाए उनके साथ घटती है, जिन पर जवानी चढती है, महावीर तो जवानी पर चढे थे, जवानी उन पर नही । जवानी चढने का अर्थ है—यौवन सम्बन्धी विकृतिया उत्पन्न होना और जवानी पर चढने का तात्पर्य शारीरिक सौष्ठव की पूर्णता को प्राप्त होना है ।

राग सम्बन्धी विकृति भोगो मे प्रगट होती है और, द्वेष सम्बन्धी विद्रोह मे । न वे रागी थे, न द्वेषी । अत न वे भोगी थे और न द्रोही ।

घर मे जो कुछ घटता है, अपनी ओर से घटता है पर वन मे तो बाहर से बहुत कुछ घट जाने के प्रसग रहते हैं । क्योकि घर मे बाहर के आक्रमण से सुरक्षा का प्रबन्ध प्राय रहता है । यदि कोई उत्पात हो, तो अतर के विकारो के कारण ही होना देखा जाता है पर वन मे बाहर से सुरक्षा प्रबन्ध का अभाव होने से घटनाओं घटने की सभावना अधिक रहती है । माना कि महावीर का अतर विशुद्ध था । अत घर मे कुछ न घटा, पर वन मे तो घटा ही होगा ?

हा । हा । अवश्य घटा था पर लोग जिसे घटने को घटना मानता है, वैसा कुछ नही घटा था । राग द्वेष घट गये थे, तब तो वे वन को गये ही थे । क्या राग-द्वेष का घटना कोई घटना नही है ? परन्तु बहिर्मुखी दृष्टि वालो को राग द्वेष घटने मे कुछ घटना सा नही लगता । यदि तिजोरी मे से लाख, दो लाख रुपये घट जायें, शरीर मे से कुछ खून घट जाये, आख, नाक, कान, घट जाये तो इसे बहुत बडी घटना लगती है, पर राग-द्वेष घट जाये तो इसे घटना ही नही लगता । वन मे ही तो महावीर रागी से वीतरागी बने थे, अल्प ज्ञानी से पूर्ण ज्ञानी बने थे । सर्वज्ञता और तीर्थकरत्व इनमे ही तो पाया था । क्या यह घटनाए छोटी हैं ? क्या कम है ? इससे बडी भी कोई घटना हो सकती है ? मानव से भगवान बन जाना कोई छोटी घटना है ? पर जगत को तो इसमे कोई घटना सी ही नही लगती । तोड-फोड की रुचि-वाले जगत् को तोड फोड मे ही घटना नजर आती है, अतर मे शाति से चाहे जो कुछ घट जाये, उसे वह घटना सा नही लगता है । अतर मे जो कुछ प्रतिफल घट रहा वह उन्हे दिखाई नही देता, बाहर मे कुछ हल चल हो, तभी कुछ घटा सा लगता है ।

जब तक देवागनाए लुभाने को न आवें और उनके लुभाने पर भी कोई महापुरुष न डिगे तब तक हमे उसकी विरागता मे शका बनी रहती है । जब तक कोई पत्थर न बरसाए, उपद्रव न करे और उपद्रव मे भी कोई महात्मा शात न बना रहे तब तब हमे उनकी वीत-द्वेषता समझ मे नही आती । यदि प्रबल पुण्योदय मे किसी महात्मा के इस प्रकार के प्रतिकूल सयोग न मिलें तो क्या वह वीतरागी और वीत-द्वेष नही बन सकता, क्या वीतरागी और वीत-द्वेषी बनने के लिए देवाग-

नाम्रो का डिगाना और राक्षसों का उपद्रव आवश्यक है ? क्या वीतारागता इन काल्पनिक घटनाओं के विना प्राप्त और संप्रेषित नही की जा सकती है ? क्या मुझे क्षमाशील होने के लिए सामने वालों का गाली देना, मुझे सताना जरूरी है, क्या उसके सताए विना मैं शांत नही हो सकता ? ये कुछ ऐसे प्रश्न है, जो बाह्य घटनाओं की कमी के कारण महावीर के चरित्र मे रूखापन मानने वालो और चिन्तित होने वालो के लिए विचारणीय है।

एक अघट घटना महावीर के जीवन में अवश्य घटी थी आज से 2507 वर्ष पूर्व दीपावली के दिन जब वे घट (देह) से अलग हो गये, अघट हो गये थे, घट-घट के वासी होकर भी घटवासी भी न रहे थे, गृह वासी और वनवासी तो वहुत दूर को बात है। अन्तिम घट (देह) को भी त्याग मुक्त हो गये। इससे अभूतपूर्व घटना किसो के जीवन मे कोई अन्य नही हो सकती, पर ये जगत इसको घटना माने तव है न।

भगवान महावीर के आकाशवत् विशाल और सागर से गम्भीर व्यक्तित्व को बालक वर्द्धमान की वाल-सुलभ क्रीड़ाओ से जोड़ने पर उनकी गरिमा बढ़ती नही, वरन खण्डित होती है। सन्मति शब्द का कितना भी महान अर्थ क्यो न हो, यह केवल-ज्ञान की विराटता को अपने मे नही समेट सकता। केवलज्ञानी के लिए सन्मति नाम छोटा ही पड़ेगा, औछा ही रहेगा। वह केवलज्ञानी की महानता व्यक्त करने मे समर्थ नही हो सकता। जिनकी वाणी एवं दशन ने अनेकों की शकाएं समाप्त की, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ मे लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की शका को समाप्त करने वाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नही कर सकती।

वढ़ते तो अपूर्ण है, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका उसे वर्द्धमान कहना कहां तक सार्थक हो सकता है। इसी प्रकार महावीर की वीरता को साप और हाथी वाली घटनाओ से नापना कहां तक सम्भव है, यह एक विचारने की वात है।

यद्यपि महावीर के जीवन सम्बन्धी उक्त घटनाए शास्त्रो मे वर्णित है तथापि वे वालक की वात को वृद्धिगत वनाती है, भगवान महावीर को नहीं। सांप से न डरना वालक वर्द्धमान के लिए गौरव की वात हो सकती है, हाथी को वश में करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है, भगवान महावीर के लिए नहीं। आचार्यो ने उन्हें यथा स्थान ही इंगित किया है। वन-बिहारी, पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं पूर्ण वीतरागी, सर्वस्वातत्र्य के उद्घोषक तीर्थंकर भगवान महावीर के लिए साप से न डरना, हाथी को काबू में रखना क्या महत्व रखते है।

जिस प्रकार बालक के जन्म के साथ इष्ट मित्र सम्बन्धी-जन वस्त्रादि लाते है और कभी-कभी तो सैकड़ों जोडी वस्त्र बालक को इकट्ठे हो जाते है। लाते तो सभी वालक के अनुरूप ही है, पर वे सब कपड़े तो बालक को पहिनाए नही जा सकते। बालक-दिन प्रतिदिन वढता जाता है, वस्त्र तो वढते नही। जव वालक 20-25 वर्ष का हो जावे तव कोई मा उन्हे वही वस्त्र पहिनाने की सोचे, जो जन्म के समय आये थे और जिनका प्रयोग नही कर पाया है, तो क्या वे वस्त्र 20-25 वर्षीय युवक को आ पायेगे ? नही आने पर वस्त्र लाने वालो का भला बुरा कहे तो यह उसकी ही मूर्खता मानी जायेगी, वस्त्र लाने वालों की नही। इसी प्रकार महावीर के वर्द्धमान, वीर, अतिवीर आदि नाम उन्हे उस समय दिये गये थे, जव वे नित्य वढ रहे थे, सन्मति (मति-ज्ञानी) थे, वालक थे, राजकुमार थे। उन्ही घटनाओ और नामो को लेकर हम तीर्थंकर भगवान महावीर को समझना चाहे, तो यह हमारी बुद्धि की ही कमी होगी, न कि लिखने वाले आचार्यो की। वे नाम, वे वीरता की चर्चाएं यथा-समय सार्थक थी।

घटना समग्र जीवन के एक खण्ड पर प्रकाश डालती है। घटनाओ को जीवन मे देखना उसे खण्डो मे वाटना है। भगवान महावीर का व्यक्तित्व अखण्ड है, अविभाज्य है, उसका विभाजन सभव नही है। उनके व्यक्तित्व को घटनाओ मे वाटना, उनके व्यक्तित्व को खंडित करना है। अखडित दर्पण मे विम्व अखण्ड और विशाल प्रतिविम्वित होते है, किन्तु कांच के टूट जाने पर प्रतिविम्व भी अनेक और क्षुद्र हो जाते हैं।

उनकी एकता और विशालता खण्डित हो जाती है वे अपना वास्तविक अर्थ खो देते हैं।

तीर्थंकर महावीर के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें उन्हें विरागी, वीतरागी दृष्टिकोण से देखना होगा। वे धर्म क्षेत्र के वीर, अतिवीर और महावीर थे, युद्ध क्षेत्र के नहीं। युद्ध क्षेत्र और धर्म क्षेत्र में बहुत बड़ा अन्तर है। युद्ध क्षेत्र में शत्रु का नाश किया जाता है और धर्म क्षेत्र में शत्रुता का, युद्धक्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को। युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को। युद्ध-क्षेत्र में पर के विकारों को मारा जाता है और धर्म क्षेत्र में अपने विकारों को।

महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं, उछल कूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं, अनन्त शांति है। उनके व्यक्तित्व में वैभव की नहीं, वीतराग विज्ञान की विराटता है।

इस प्रकार जगत् सर्वथा अलिप्त, सम्पूर्णत आत्म-निष्ठ महावीर के जीवन को समझने के लिए उनके अन्तर में झाँकना होगा कि उनके अन्तर में क्या कुछ घटा। उन्हें बाहरी घटनाओं से नापना, बाहरी घटनाओं में बाँधना सम्भव नहीं है। यदि हमने उनके ऊपर अघट घटनाओं को थोपने की कोशिश की तो वास्तविक महावीर तिरोहित हो जावेंगे, वे हमारी पकड़ से बाहर हो जावेंगे और जो महावीर हमारे हाथ लगेंगे, वे वास्तविक महावीर न होंगे, तेरी-मेरी कल्पना के महावीर होंगे। यदि हमें वास्तविक महाबीर चाहिये तो उन्हें कल्पनाओं के घेरों में न घेरिये, उन्हें समझने का यत्न कीजिए, अपनी विकृत कल्पनाओं को उन पर थोपने की अनाधिकार चेष्टा मत कीजिए। □

बून्द नहीं सागर बनिए

जल की नन्ही बूंद के लिए सब ओर संकट ही संकट है, आपत्ति ही आपत्ति है उस मिट्टी का कण सोखने को उभरता है हवा का झोंका उड़ाने को फिरता है, सूरज की तपती किरण जलाने को उतरती है, पक्षी की प्यासी चोंच पाने को अकुलाती है। कि बहुना, जिधर देखो उधर मौत बरसती है। यदि बूंद को अपना अस्तित्व बचाना है, तो उसे अल्प से भूमा बनना होगा, क्षुद्र से विराट होना होगा, महासमुद्र बन जाना होगा। समुद्र हो जाने के बाद कोई भय नहीं, आतंक नहीं। आंधी और तूफान आएँ, लाखों पशु और पक्षी आएँ, जेठ का सूरज आग बरसाए और कड़-कड़ाती बिजलियाँ मौत उगलें, परन्तु समुद्र को इन सब उपद्रवों का क्या डर है? वह भूमा बन चुका है विराट हो चुका है। उसके अस्तित्व को दुनिया में कहीं भी खतरा नहीं। मनुष्य भी 'मैं' और 'मेरा' में अवरुद्ध एक क्षुद्र बूंद है। वह यदि अपने 'मैं' और 'मेरे' को 'हम' और हमारे का विराट रूप दे सके, तो वह बूंद से समुद्र बन जाय, देश और काल की सीमाओं को तोड़ कर अजर, अमर हो जाय।

—'अमर वाणी'

सुख देने में है,
लेने में नहीं

देने वाला चमकता है,
लेने वाला काला पड़ता है ।

☐ श्री रणजीतसिंह कूमट
(अन्त्योदय कमिश्नर, राजस्थान सरकार, जयपुर)

एक और देवताओं की पंगत थी और एक तरफ राक्षसों की । दोनो तरफ खाना परोसा जा रहा था परन्तु शर्त यह थी कि खाना बिना कोहनी को मोड़े खाना था बड़ी मुसीबत थी । हाथ मोड़े बिना कैसे ग्रास मुंह को जायेगा । राक्षसों की पगत में प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति व तरकीब से खाना अपने मुंह तक उछालकर पहुचाने की कोशिश कर रहा था परन्तु अधिकांश खाना जमीन पर ही जा रहा था और सब असंतुष्ट व भूखे नजर आ रहे थे । परन्तु देवताओं ने नई तरकीब निकाली । वे आमने-सामने बैठ गये और अपना भोजन सामने वाले देवता को खिलाने लगे और इस प्रकार एक दूसरे को बिना कोहनी मोड़े भोजन खिलाकर स्वयं भी सुख महसूस कर रहे थे और दूसरों को भी तृप्त कर रहे थे। सामान भी व्यर्थ नही जा रहा था ।

क्या आनन्द आ रहा था दूसरे के लिए जीने मे । और कितना असन्तोप था स्वय को ही खिलाने की कोशिश मे ।

हमारे जीवन मे क्या यही चरितार्थ नही हो रहा है । प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ही जीने की कोशिश कर रहा है । सब कुछ अपने लिए सग्रह कर उपभोग करना चाहता है । इसी होड मे हिसा, चोरी, झूठ, कपट, शोषण आदि बुराइयो की व्यापकता दिखाई देती है ।

भगवान महावीर ने आचारांग सूत्र मे बताया है कि किन कारणो से मनुष्य हिसा करता है और अन्य प्राणियो को कष्ट पहुंचाता है ।

'वर्तमान जीवन के लिए प्रशसा, सम्मान और पूजा के लिए जन्म-मरण और मोचन के लिए, दु:ख, प्रतिकार के लिये जीवों की हिंसा करता है, करवाता है या अनुमोदन करता है ।'

स्पष्ट है कि अपने लिए ही जब जीना है और संग्रह करना है तो हिंसा, चोरी व कपट करना ही होगा। जब सब ही इस प्रकार का व्यवहार करेंगे तो कुछ सफल होवेंगे और अधिकांश असफल। इससे असंतोष, घृणा और युद्ध का वातावरण बना रहेगा।

हम अपना जीवन कुशलता व शांति से, संतोष व सुख से कैसे बितायें, इसलिए नैतिक नियमों का निर्माण हुआ, धर्म का प्रादुर्भाव हुआ और समाज का गठन हुआ। सामाजिक जीवन का प्रारम्भ ही तब से होता है जब हम अपनी बजाय दूसरे की चिन्ता करने लगते हैं। एक दूसरे को सहारा देने लगते हैं। पत्नी पति के लिए त्याग करती है, पति पत्नी को सहारा देता है। मां बच्चों के लिए त्याग करती है और बच्चे बड़े होकर मां को सहारा देते हैं। यह करुणा, प्रेम, सहानुभूति समाज के आधार हैं।

परन्तु ये गुण जब परिवार और परिजनों के लिए सीमित हो जाते हैं तो फिर कलह प्रारम्भ हो जाता है। तब इकाई व्यक्ति न होकर परिवार बन जाता है और परिवारों के बीच या वर्गों के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है।

अपने जीवन का अवलोकन करें। हम किसके लिए जी रहे हैं। पढ़ लिख कर शादी की परिवार बढ़ाया, पालन पोषण किया, धन संग्रह किया और मर गये। क्या यही जीवन का स्तर है? यदि नहीं तो जीवन स्वयं या स्वयं के परिवार के लिए नहीं बल्कि कुछ उच्च आदर्शों के लिये है।

भगवान महावीर ने संविभाग व अपरिग्रह का सिद्धांत दिया। संग्रह स्वयं के लिए न करो सबमें बांटो और सीमा से अधिक संग्रह न करो जो भी संग्रह करो उसमें स्वयं का ममता भाव न रहे बल्कि ट्रस्टीशिप का भाव रहे जैसा गांधीजी ने कहा। यह धन स्वयं के भोग के लिये नहीं बल्कि सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय' है। जब संग्रहीत धन पर मूर्छा नहीं रहती है। तो यह अपरिग्रह कहलाता है और तब धन का उपयोग कल्याण के लिए होता है। परन्तु धन पर स्वयं की मूर्छा व अधिकार रहता है तो धन पाप का मूल बनता है।

देने वाला चमकता है और लेने वाला काला पड़ता है। इसे हीरे और कोयले के दृष्टांत से समझें हीरा और कोयला दोनों कार्बन परमाणु से बने हैं। दोनों का एक ही तत्व है परन्तु एक काला है और एक चमकीला कारण यह है कि कोयले में जितनी भी रोशनी आती है उसे अपने आप में समावेशित कर लेता है जबकि हीरा समस्त रोशनी को वापस फेंकता है चूंकि हीरा रोशनी वापस देता है अतः वह चमकता है और कोयला रोशनी स्वयं के लिए रख लेता है, अतः काला दिखाई देता है।

यही बात संसार पर लागू होती है। जो स्वयं कुछ प्राप्त कर वापस दे देते हैं, वे चमकते हैं, खुद भी सुखी होते हैं और अन्य को भी सुखी करते हैं। लेने वाला भी उपकृत महसूस करता है और देने वाला भी परन्तु जो केवल संग्रह करता है और देता नहीं, उसी भार से डूबता जाता है। वह मन से भी—और तन से भी काला ही पड़ता जाता है।

ईसा मसीह ने जब कहा कि सूई की नोक से ऊंट का निकलना संभव है परन्तु स्वर्ग के द्वार से धनी का निकलना असंभव नहीं है तो उसका तात्पर्य उन धनी लोगों से था जो धन का संग्रह अपने लिए ही कर रहे थे और मूर्छा में डूब रहे थे।

सुख देने में है, लेने में नहीं। जो तन की सेवा दे सकता है उसकी निःस्वार्थ सेवा का मूल्य धनी के दान से भी बढ़कर है। सेवा हमारे अहं को गलाती है और शरीर के राग को नष्ट करती है। निःस्वार्थ सेवा मानवीय गुणों का विकास कर उसे ऊंचा उठाती है। मनुष्य का सच्चा विकास इसी में निहित है।

'जीना है तो स्वयं के लिये न जी। अन्य के लिये जी।' यदि सब इसी आदर्श का पालन करें तो यह संसार देवताओं की पंगत बनेगी और सब एक दूसरे का भला कर सुखी बनेंगे। परन्तु यदि सब अपने ही लिये जीने की कोशिश करेंगे तो आपाधापी में राक्षसों की पंगत बन जावेगी और नारकीय वातावरण बन जायेगा।

भगवान महावीर ने यही कहा है कि जो संविभाग करके नहीं खाता, वह मोक्ष को नहीं जा सकता। □

सेवा :

आत्मकल्याण भी, लोककल्याण भी

☐ डॉ० नरेन्द्र भानावत
(एसोसियेट प्रोफेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)
सी–235 ए, तिलक नगर, जयपुर–302004

संसार में चार बाते प्राणी के लिए बड़ी दुर्लभ कही गई है। वे है— मनुष्य जन्म, धर्म का श्रवण, दृढ श्रद्धा और संयम में पराक्रम। मनुष्य जन्म अनन्त पुण्यों का फल है। यह मिल जाने पर भी यदि शेष बाते नही मिलती तो मानव जन्म सार्थक नही हो पाता। इसके लिए सत्संग और समाज का संस्कार मिलना आवश्यक है। मनुष्य जन्म लेने के बाद अपने शारीरिक और मानसिक विकास के लिए समाज पर निर्भर रहता है। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध सहयोग और सेवा भाव पर निर्भर है। इस दृष्टि से सेवा भावना सामाजिकता का आधार है।

ज्यों-ज्यों प्राणी मे इन्द्रियों का विकास होता जाता है त्यो-त्यो उसमें सहयोग की भावना बढती जाती है। एक इन्द्रिय वाले प्राणी की अपेक्षा पंचेन्द्रिय में सहयोग भावना का यह अभिवृद्ध रूप देखा जा सकता है।

सेवा भावना का स्रोत तभी फूटता है जब व्यक्ति मे दूसरों को अपने समान समझने की भावना का उदय होता है। हमारी आत्मा जैसे हमें प्रिय है, वैसे ही दूसरे की आत्मा उसे प्रिय है। ऐसा समझ कर, संसार के सभी प्राणियों के प्रति मित्रता स्थापित कर, उनके दु:ख को दूर करने में सहयोगी बनना सेवा धर्म का मूल है। जब व्यक्ति अपने अहंकार को भूल कर, मन और वचन मे सरलता लाता है तभी वह सेवा के क्षेत्र मे सक्रिय बन पाता है।' 'सेवा' शब्द 'से' और 'वा' से बना है। 'से' का अर्थ है सेचन करना और 'वा' का अर्थ है वारण करना। सेवा के दो मुख्य कार्य है। एक तो दूसरे के कार्य मे सहयोगी बनकर उसके कार्य को पूरा करना अर्थात् उसके कार्य को सिंचित करना और दूसरा उसके कार्य या जीवन-निर्वाह मे जो बाधाए हैं उन्हे दूर करना, उनका निवारण करना। इस प्रकार सेवा धर्म जीवन-रक्षा का धर्म है। इस धर्म का निर्वाह उत्तम रूप से

तभी किया जा सकता है जब व्यक्ति दूसरों के दुख को दूर करने या हल्का करने मे अपने सुख का त्याग करे। त्याग भावना के बिना सेवा धर्म का निर्वाह हो नही सकता।

त्याग भावना चित्त की निर्मल वृत्ति है। जब व्यक्ति कषाय भावो का त्याग कर सेवा मे प्रवृत्त होता है तब उसमे सेवा के बदले यश, मान, प्रतिष्ठा आदि कुछ भी पाने का भाव नही रहता। पर जब ये कषाय भाव नही छूटते तब जो सेवा की जाती है उसमे प्रदर्शन और सम्मान पाने की भावना रहने से वह व्यवसाय का रूप धारण कर लेती है। आज सेवा का यह व्यावसायीकरण धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओ व पार्टियो मे बढता जा रहा है।

'उत्तराध्ययन' सूत्र के २६वें अध्ययन सम्यक्त्व पराक्रम' मे गौतम स्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं कि हे भगवन्! वैयावृत्य अर्थात सेवा करने से जीव को क्या लाभ होता है? भगवान उत्तर मे फरमाते हैं कि वैयावृत्य अर्थात् सेवा करने से जीव को तीर्थंकर नाम कर्म का बध होता है। तीर्थंकर जीव की वह उच्चतम अवस्था है जब आत्मा की ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बल आदि की समस्त शक्तियां प्रकट हो जाती है और जन्म मरण के भवप्रपच से मुक्ति होना निश्चित हो जाता है। तीर्थंकर ऐसा धर्मनायक और लोकनायक है जो अपनी देशना के बल पर जीवो को ससार सागर से पार उतारने मे समर्थ हैं। सेवा का ऐसा महान फल तभी मिल सकता है जब सेवा शुद्ध अन्त करण से की गई हो उसमे छल कपट और अहकार की गध न हो। भगवान् ऋषभदेव ने अपने पूर्व भव मे जीवानन्द वैद्य के रूप मे एक रुग्ण मुनि की निष्काम भाव से सेवा की, फलस्वरूप उन्हें तीर्थंकर पद की प्राप्ति हुई।

सेवा का क्षेत्र विस्तृत और बहुमुखी है। 'स्थानाग सूत्र' मे दस प्रकार की सेवा बताई गई है—आचार्य की सेवा उपाध्याय की सेवा, स्थविर की सेवा तपस्वी की सेवा शिष्य की सेवा ग्लान रोगी की सेवा गण की सेवा, कुल की सेवा सघ की सेवा और सहधर्मी की सेवा। अन्तिम चार सेवाओ मे देश सेवा और समाज सेवा का भाव सम्मिलित है।

सेवा मे ऊच-नीच की भावना नही रहनी चाहिए। जिसकी सेवा की जा रही है उसके प्रति सेवाभावी के मन मे हीनता की भावना नही आनी चाहिए। सच्ची सेवा मे परमात्मा का वास होता है। पर आज सेवा को दान के साथ विशेष रूप से जोड दिया गया है।

यद्यपि अपने परिग्रह का त्याग कर, उसका सेवा कार्यों मे उपयोग करना अच्छी बात है पर इसमे दाता सकारात्मक रूप से सक्रिय बन सेवा करने का अवसर नही प्राप्त कर पाता। धन कमाने के स्रोत कितने शुद्ध हैं इस पर भी सेवा की शुद्धता निर्भर है। यदि तस्करी, भ्रष्टाचार जसे अशुद्ध तरीको से धन एकत्र कर दान दिया गया है तो वह फलदायी नही बनता। सच तो यह है कि मुद्रा के रूप मे, पैसे के रूप मे दान देने का हमारे यहा शास्त्रीय विधान नही है। दान के रूप मे आहार-दान, औषध-दान, ज्ञान दान और अभयदान का विशेष उल्लेख रहा है। भूखे को भोजन देना और वह भी सम्मानपूर्वक, अज्ञानी को ज्ञान देना वह भी विवेकपूर्वक, रोगी को औषध देना वह भी प्रेमपूर्वक और प्राणी को सब प्रकार से निर्भय बना देना, दान का सर्वश्रेष्ठ रूप है। जब तक मन मे घृणा है, अभिमान है, लोभ है, भय है, तब तक दान के रूप मे ऐसी सेवा हो नही सकती। धनवानो को केवल धन का दान देकर ही नही रह जाना है। यह तो सेवा का नकारात्मक पक्ष है। व्यापार मे 'स्लीपिंग पार्टनर' जैसा रोल है। उन्हें तो सक्रिय रूप से सेवा मे साझीदार बनना चाहिए।

सेवा अहिंसा का सक्रिय रूप है पर हमने अहिंसा को कीडे-मकोडो और पशु-पक्षियो की रक्षा तक ही सीमित कर दिया है। क्या कारण है कि मानव के द्वारा मानव का शोषण होने के खिलाफ हमारी अहिंसा का तेज प्रकट नही होता? हम सूक्ष्म अहिंसा के पालन पर तो बल देते हैं पर मानव का शोषण अन्याय से बचाने में अग्रणी नही बनते? हमने सेवा को मुख्यत सत-महात्माओ की सेवा तक ही सीमित कर दिया है। विश्व की वृहत्तर मानवता, जो भूख से तडप रही है, नानाविध रोगो से ग्रस्त है, आश्रय के अभाव मे जो बेसहारा है उसे त्राण देने मे हमारे हाथ नही उठते, पैर नही बढते। हमारी सेवा गरीबो की सेवा न बनकर पूजा-पाठ और

बाहरी धार्मिक क्रियाओं की सेवा बनती जा रही है। सेवा का यह रूप आत्मा को परमात्मा बनाने की बजाय पराधीन बनाता जा रहा है। हम ऊंचे स्वर से भगवान् का कीर्तन ही न करते रहे वरन् जो दुःख और पीड़ित है उनकी पुकार सुनें, हम संत-महात्माओं के चरण-वन्दन करते ही न रहे वरन् समाज मे जो पैरों तले कुचले जाते है, जो पददलित है, उन्हे ऊंचा उठाये, अपने गले लगाये।

सेवा से महान् पुण्य होता है। पर यह पुण्य मात्र कुछ देने से ही नही होता। शास्त्रों मे जिन नौ पुण्यो की चर्चा की गई है उनमें प्रथम पाच पुण्य—भोजन, पानी, स्थान, विश्राम के साधन, वस्त्र आदि देने से होते है पर अन्तिम चार पुण्य कुछ देने से नही वरन् मन में दूसरों के प्रति कल्याण की भावना भाने से, दूसरों के प्रति हितकारी, प्रिय वचन बोलने से, अपने शरीर द्वारा दूसरों की सेवा करने से तथा गुणीजनों, गुरुजनों आदि के प्रति विनय, नमस्कार, सत्कार आदि करने से होते है। आज हम बाहरी क्रिया करने के ही अधिकाधिक अभ्यासी होते जा रहे है पर जब तक यह 'करना' 'हमारे 'होने' (becoming) बनने मे परिणित नही होता तब तक सेवा सच्चे अर्थो मे होती नहीं। भगवान् महावीर ने सवा का तीर्थकर गोत्र बनने का जो फल बताया है, वह सेवा की आंतरिकता से जुड़ने पर ही सम्भव है। हम इस आतरिकता से जुड़ सके, इसी में अपना और दूसरो का कल्याण है। □

महाव्रत और विवेक

एक अधा मार्ग से भटककर आगे बढ रहा है। उसके रास्ते मे कुंआ है। उसे दिखाई नही दे रहा है। यदि ऐसे समय मे उसे कुंए की ओर जाते हुए देखकर देखने वाला कुछ न बोले, अन्धे को सावधान न करे तो यह पाप है, बहुत बड़ा पाप है। और तो क्या, यदि मौनव्रत भी ले रखा हो तो उस समय मौन रहने का कोई अर्थ नही है। इसलिए भगवान् महावीर कहते है कि जो भी प्रत्याख्यान ले, जो भी क्रिया करें। और जो कुछ बोलें या न बोले अथवा मौन रहे, उसमे विवेक का होना आवश्यक है। साधना का मार्ग एकान्त निषेधरूप भी नही है और एकान्त विधेयरूप भी नही है। एक समय के लिए किया गया किसी कार्य का निषेध परिस्थितिवश दूसरे समय उसी रूप मे निषेध न रहकर कर्त्तव्य हो जाता है। स्त्री का स्पर्श करने का निषेध है, साधु नवजात बच्ची का भी स्पर्श नही करता। परन्तु यदि कोई साध्वी भूताविष्ट है, क्षिप्त-चित्त है, नदी या तालाब मे डूब रही है, तो उस समय उसे बचाने की दिशा मे वह पूर्व निषेध अवरोधक नही है। ऐसे समय के लिए स्पष्ट विधान है कि साधु साध्वी को पकडकर उसे पानी से बाहर निकाल सकता है। इसी प्रकार किसी विशेष प्रसंग पर आवश्यकता पड़ने पर जानते हुए भी यह कह दे कि मैं नही जानता, तो साधु का सत्य महाव्रत भंग नही होता। उस समय वही सत्य है।

भगवान महावीर का अनेकान्तवाद

●

☐ विजयेन्द्र दिन्न सूरि (इन्द्रसूरि)

भगवान महावीर के सिद्धान्त वतमान युग का विभिषिकायें मिटाने के लिए अचूक औषधि तुल्य हैं आज जगत मे वैमनस्य के ज्वालामुखी धधक रहे है, सकीर्णता के जाल मे नेतागण फसे हुये है। धर्म राजनीति के नागपाश मे कराह रहा है। स्वार्थ के नाग फुफकार रहे हैं एव हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है। ऐसे विकट एव अशान्त वातावरण मे प्रभु महावीर के अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्त अमृत तुल्य हैं। अहिंसा, मैत्री, प्रमोद, करुणा एव माध्यस्थ भाव के रस मे पगी हुई है जो प्राणी मात्र को प्रेमामृत पिलाकर सुख समृद्धि की ओर अग्रसर करती है और शाश्वत सुख प्रदान करती है। अहिंसा सहिष्णुता सिखाती है। सहिष्णुता प्राणी मात्र के प्रति स्नेह और सम्मान की भावना विकसित करती है। हिंसात्मक समाज एकान्तवाद पर स्थित है। सहिष्णुता लोकतन्त्र की आधारशिला है।

भगवान महावीर ने अनेकान्त दृष्टिकोण अपनाने के लिए उपदेश दिया है। अनेकान्त दृष्टिकोण मे सहिष्णुता का विकास होता है। सबके प्रति प्रेम और आदर भाव रहता है। जैन धम अनेकान्त दर्शन कहलाता है। अनेकान्त दशन (अनेकान्तवाद) वस्तु को सही रूप म देखने के लिए जिस विधि का निर्देश करता है—वह है स्याद्वाद। अनेकान्तवाद सिद्धान्त है—स्याद्वाद इसका व्यावहारिक पक्ष है।

ससार के समस्त टटे-फिसाद एकान्त दृष्टि के कारण हैं। एकान्त दृष्टि पक्षपात पूर्ण होती है। वह राग-द्वेष की जननी है। इसमे अह' का पोषण होता है। यह ममता को बढाती है और स्वार्थ को फैलाती है। यह हिंसा की जड है। अत अनेकान्त दृष्टि ही सवश्रेष्ठ है।

भगवान महावीर ने अहिंसात्मक समाजवाद के लिए अपरिग्रहवाद को सर्वोत्तम बताया है। अपरिग्रह का

अर्थ है–संग्रह न करो। धन-सम्पत्ति आपका पुण्य-फल है; परन्तु इस पुण्य-सृजन में सबका हिस्सा है; सबका सहयोग है। अतः जो सम्पत्ति आपको मिली है–वह सबकी है। इस पर मूर्च्छा-आसक्ति मत रखो। भगवान की पीयूष वाणी :

"मुच्छापरिग्गहोनुत्तो"

आसक्ति को ही परिग्रह कहा गया है। इसी लिए जैन धर्म मे दान की महिमा है। दान मे दानदाता और दान लेने वाला–दोनो का समान महत्व है। दान देने वाला मन में यह भाव रखता है कि दान लेने वाला मेरा परम उपकारी है; उसकी कृपा है कि वह दान लेकर मेरे पुण्य का सृजन कर रहा है। श्री दशवैकालिक सूत्र में स्पष्ट कथन है –

"असंविभागी न हुतस्य मोक्खो"

अर्थात्–अर्जित धन को जो पुनः संसार को नही बाटता, उसकी मुक्ति नही होती।

इस प्रकार भगवान महावीर ने अहिंसा, अनेकान्त-वाद एव अपरिग्रहवाद के सिद्धान्त से जगत कल्याण व "वसुधैव कुटुम्बकम्" का श्रेयस्कर मार्ग बताया है। □

उत्थान आत्मा का स्वभाव है !

'मनुष्य का गिरना सहज है, उठना कठिन है। पतन की ओर जाना स्वभाव है, प्रकृति है, और उत्थान की ओर आना कठिन है, दुष्कर है। सक्षेप मे निष्कर्ष यह है कि पतन स्वभाव है और उत्थान विभाव है।' जो धर्मोपदेशक, दार्शनिक या विचारक ऐसी भाषा का प्रयोग करते है, वे अज्ञान-रात्रि के अन्धकार मे भटक रहे है। उनके पास मानव जाति को प्रेरणा देने के लिए कुछ भी सन्देश नही है। यदि मनुष्य का पतन स्वभाव है और उत्थान विभाव है, तो फिर धर्म का उपदेश, सदाचार की पुकार, इखलाक का शोर किस लिए हो रहा है? क्या कभी कोई अपने स्वभाव से विपरीत भी हो सकता है, उस छोड भी सकता है? कभी नही। भगवान् महावीर की दार्शनिक भाषा, इस भाषा से सर्वथा विपरीत है। वे कहते है, उत्थान सहज है, स्वभाव है, निज परणति है और पतन विभाव है, पर परणति है। उठना सहज है, गिरना कठिन है। क्रोध, मान, माया और लोभ से क्षमा, नम्रता, सरलता एव उदारता मे आना स्वभाव मे आना है, अपने सहज भाव मे पहुचना है! इसके लिए किसी बाह्य आलबन की आवश्यकता नही! हा, क्रोध, मान आदि कषायभाव मे जाना, विभाव मे जाना है, अतः वह कठिन कार्य है। इसके लिए औदयिक भाव का आलबन चाहिए। तुम्बा पानी की सतह पर तैरता है, यह उसका स्वभाव है, इसके लिए किसी बाह्य साधन की अपेक्षा नही है। क्या तुम्बा तैरने के लिए किसी का सहारा लेता है? नही, वह अपने अन्तः स्वभाव से तैरता है। और तूम्बे को डूबने के लिए अवश्य ही बाह्य साधन की अपेक्षा रहेगी। पत्थर बाध दें, वह डूब जायगा। तूम्बा अपने-आप नही डूबा है, पत्थर ने जबरदस्ती डुबाया है।

यही बात आत्माओ के लिए है। संसार-सागर से तैरना उनका अपना स्वभाव है और संसार सागर मे डूबना? यह विभाव है, कर्मो का या वासनाओ का परिणाम है। वासनाओ को दूर करो, फिर हे विश्व की आत्माओ! तुम सब तैरने के लिए हो, डूबने के लिए नही। □

वीरावतार

□ श्री सुमन्त भद्र
49/4691, रैगरपुरा
करोलबाग, नई देहली 110 005

धरा पर क्रूरतम हिंसा रही थी नृत्य ताण्डव रच,
मृषा का राज्य, करके ध्वस्त धर्मो की ध्वजा पावन ।
किये अनुदाम था जन को अचानक सत्य अमृतघन ।।
प्रचेता वीर धरती पर अहिंसा सरि बहा लाये,

विशोषण की कपटज्वाला सदा दासत्व का भय स्थिर,
अहर्निश युद्ध का वर्तन प्रतिक्षण हानि का आराम ।
किये थे बद्ध मानव को दिखाने मोक्ष का पथ चिर,
प्रतिज्ञा पुरुष सन्मति इस मही दिनमान बन आये ।।

बिकी अनमोल लज्जा नारियों की वचकों के कर,
कुशीलता पिशुनता पशुता बनी पर्याय मानव की ।
हृदय के क्षीरसागर शुष्क हो पीने लगे शोणित,
अभय के देवता भवव्याधि की औषधि बने आये ।।

रहे थे भोग यज्ञो को पिशाची वृत्ति के दानव,
बने थे क्षुद्र जीव हविष्य समिधा निष्करुणता थी ।
स्रुवा थी भ्रष्ट अभिलाषा कुशा थे शल्य अन्तस् के,
बने धर्मेन्द्र शतमख त्राणफल अतिवीर जग आये ।।

जहा अस्पृश्य थे जन स्पृश्य केवल वासना भर थी,
कपाटों में पड़े थे बन्द देवो के विलासी शव ।
जहा पर देवता-निर्माल्य केवल श्वान खाते थे,
वहा पर माग सर्वोदय उदयगिरि वीर ले आये ।।

सदा अन्यायप्रिय शासक रहे थे अपहरण कर धन,
अन्धशासन मे सभी सत्रास से आकुल ।
जहां व्यभिचार–कोलाहल भरा था ग्राम नगरों में,
वहां समभाव का मधुऋतु प्रबल विश्वास ले आये ।।

अभी तक काल साक्षी है प्रलय को गति गहन रोकी,
दिशायें जानती हैं व्यथा के वे दुर्ग भंगुर कर ।
किया था मुक्त मानव को दिया गौरव उसे खोया,
प्रबल पुरुषार्थ के पोषक प्रचारक वीर बन आये ।।

भावना का महत्व

ससार का कोई भी पदार्थ न हमे बाधता है, न हमे मुक्त करता है। और तो क्या, भगवान् भी किसी का बुरा या भला नही कर सकते । जो कुछ भी है सब हमारी भावना पर ही निर्भर है। भावना ही ससार का हेतु है, और यही मुक्ति का हेतु भी है । चमत्कार मनुष्य की अपनी भावना का है, बाह्य वस्तु का नही ।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।"

"जाकी रही भावना जैसी प्रभू मूरत देखी तिन तैसी ।

वस्तु स्वभाव को मत देखिए । मन उसे दोष दीजिये । वस्तु हमे कुछ भी प्रदान नही करती । यह तो हमारा मनोभाव है, जो वस्तु को निमित्त मानकर अपने अन्दर से ही जागृत होता है ।

'अमर भारती'

जीवन और शांति

☐ तेजकरण डण्डिया
राजेन्द्र मार्ग, बापू नगर, जयपुर

जीवन एक खेल है, संसार खेल का मैदान और खिलाडी हम सब लोग। खेल अच्छी तरह खेला जाय। खेल प्रभावशाली हो, स्वयं को और दूसरों को आनन्द की अनुभूति कराने वाला हो इसके लिए आवश्यक है कि खिलाडी को खेल के नियमों की जानकारी हो, खेल खेलने का अभ्यास हो। अर्थात् नियमों का पालन सहज रूप करते हुये उसे खेल खेलने का अभ्यास हो। यदि कोई खिलाडी केवल खेलने के नियमों की जानकारी करके यह मानले कि उसे खेल में दक्षता प्राप्त हो गई या वह अच्छा खिलाडी है तो यह उसका भ्रम ही कहलायेगा। परन्तु हम में से अधिक इसी भ्रम में रहते हैं, इसी भ्रम में जाते हैं। केवल मात्र जीवन सिद्धान्त की चर्चा करना मात्र पर्याप्त मानते हैं। आचरण में इन्हें उतारने की आवश्यकता नहीं समझते। कुछ खिलाडियों की दशा तो और भी दयनीय होती है। इन विचारों को तो खेल के नियमों की जानकारी भी नहीं होती फिर भी खेल के मैदान में भाग-दौड करते हुये खेल का समय गुजार देते हैं।

और इनकी–

सुबह होती है, शाम होती है।
जिन्दगी यूं ही तमाम होती है॥

संसार की असारता का जीवन की विषमताओं का, कष्टों का यह जीव रोना रोते रहते हैं।

ये न अपने आपको जानने का प्रयत्न करते हैं। न जीवन के लक्ष्य का इन्हें बोध होता है। भीड के साथ भौतिक सुखों की प्राप्ति में अपनी इच्छाओं की पूर्ति में, जीवन को खपाते रहते हैं। इच्छायें कभी पूरी होनी नहीं, एक पूरी हो जाती है तो दूसरी जन्म ले लेती है और यह क्रम चलता ही रहता है और इनकी पूर्ति में इनको न्याय अन्याय का भी विचार नहीं रहता, दया और दान भी ढकोसला और अहम की तुष्टि का साधन बन जाता वहै,धर्म भी क्रिया की एक सीमा तक ही रह जाता है।

बहुत व्यस्त रहकर सब कुछ करते हुये भी ये जो करना चाहिये नही कर पाते। अपनी ओर देखा नही जाता। दूसरों से इनको शिकायत ही बनी रहती है। अपनी हरेक असफलता का कारण ये दूसरों मे ढूंढने का प्रयत्न करते हैं। आरोपो और प्रत्यारोपों मे सारा जीवन समाप्त कर लेते है। रो-रो के जिन्दगी को जीने की कोशिश करते है।

मर मर के जिन्दगी को जिया भी तो क्या जिया।
यह जिन्दगी उन्ही की है जी कर जो मर गया।।

ससार के सारे कष्टों, दुःखो और विपमताओ के वावजूद यह जीवन जीने योग्य है। हसी खुशी से जीने योग्य मर-मर कर जीने योग्य नही, अपितु जी जी कर मरने योग्य। यह तभी सम्भव है जव हम परिस्थिति को स्वीकार करे। यथार्थ से दूर भागने की कोशिश न करे अपने आपको समझे, अपनी शक्ति को पहिचाने और अपनी सामर्थ और बुद्धि के अनुसार जीवन के लक्ष्य की दिशा मे जो कुछ अधिक से अधिक किया जा सकता है, जिसके करने की हममे क्षमता है, उसके करने को तत्पर रहें और करे। संसार की असारता ही कुछ कर गुजरने का आव्हान करती है, पौरुषहीन बनकर पलायनवादी बनने का नही।

जिन लोगो को आज हम उनके ऊंचे विचार और आदर्शो के लिए याद करते है, जयन्तीया मनाते है, गुणगान करते है, उन्हे जीवन को जीने की कला आती थी, उनने जीवन को जीने का प्रयत्न किया था, जीवन से भागने का नही, उन्हे संसार से विरक्ति हो सकती है अपने जीवन से नही, उन्होने यथार्थ को समझते हुए जीवन को जीया था, अपने कल्याण के साथ दूसरो का कल्याण किया था, विना अहम के विना अहसान के अपने कल्याण की साधना मे उनके द्वारा दूसरो का भी कल्याण हो जाता था।

हमें चाहिये कि उनके जीवन का अध्ययन करे उनके अनुभवो का लाभ उठाये। उन्होने क्या कहा ? क्यो कहा ? क्या किया ? क्यो किया ? किस परिस्थिति मे किया, इस पर चिंतन और मनन करे। जो कुछ उनने किया या कहा उसके केवल गुणगान करने से हमारा कल्याण नही हो सकता। हम इस सवको जाने, जानकर जागृत विवेक से जितना माने उसका जीवन मे आचरण करे। और जो सत्य हमने जाना और माना है उसकी साधना मे जुट जाये।

कठिनाई यह है कि जो हम मानते है उसके प्रति हमें मोह तो वड़ा होता है, इतना कि मौका आने पर खून खरावी भी कर सकते है परन्तु उसके प्रति हम प्राय ईमानदार नही होते। हमारी स्थिति प्रातः नशेवाजो की सी होती है जो नशे की धुन मे कुछ भी कर सकते है पर जो करना चाहिये वह नही कर पाते। हम भीडन्त मे इस वुरी तरह फंसे रहते है कि जो हम चाहते है वह नही कर पाते, जो भीड़ चाहती है हमसे करा लेती है। और इस प्रकार हम अपने साथ ही विश्वासघात करते रहते है। जव हम अपने ही सगे नही तो दूसरों का क्या भला कर सकते हैं। आवश्यकता है अपने आपको समझने की। आत्मनिरीक्षण करने की। आत्मविश्वास जागृत करने की।

एक व्यक्ति किसी दूसरे को भुलावे मे डाल सकता है, सत्य को दवाकर असत्य का पोषण कर सकता है अन्याय से न्याय का गला घोट सकता है। परन्तु वह अपने आपको भुलावे में नही डाल सकता। हो सकता है वह थोडे समय के लिए इस स्थिति से समझौता करले परन्तु अपने स्वभाव मे आने पर उसे अपनी कमजोरियो का अहसास होने लगता है उसकी अंतरआत्मा उसको धिक्कारने लगती है फिर भी भीड़ के कुचक्र में ऐसा फंसा रहता है कि जो नही करना चाहता उसे भी करने को मजवूर होता रहता है। यह है स्थिति मर मर के जीने की। अन्त समय मे ऐसे लोगों की क्या स्थिति होती होगी कहना मुश्किल है। परन्तु एक वार अपने जीवन के खट्टे-मीठे कल्पों के परिपेक्ष में वह अपनी छवि निहारने का प्रयत्न अवश्य करता है।

पसीना मौत का माथे पर आया आइना लाओ।
हम अपनी जिन्दगी की आखरी तस्वीर देखेंगे।।

दूसरो को उसकी तस्वीर कैसी भी लगती हो यह महत्वपूर्ण नही होता। महत्वपूर्ण यह है कि जीवन के सारे कार्यकलापों से रगी उसकी तस्वीर उसको स्वय को कैसी लगती है। यदि इस सवको देखकर उसे आनद की और सन्तोप की अनुभूति होती है तो वह शांति के साथ मृत्यु का वरण करता है। उसकी आत्मा की शाति के लिए न तो पिडदान की, न श्राद्ध और तर्पण की, न शुभचिंतकों द्वारा शाति पाठ की आवश्यकता होती है। ☐

संदर्भ : वर्द्धमान महावीर

□ प्रो० नईम
रायागंज, देवास
(जिला–देवास म प्र)

सूरज वह .
पुरबिया क्षितिज पर जो उदित हुआ,
आज तक नहीं डूबा

देखे आकाश और, सूरज भी देखे हैं,
लेकिन उसके आगे इनके क्या लेखे हैं।
लोक वेद ने गाया, मन आखिर मन ही है–
आज तक नहीं ऊबा

ताप और शीतलता साथ-साथ लिए हुए,
दुखियारे दीनों के हाथों में हाथ लिए।
मरुथल में कटीली खजूर नहीं–
हरी भरी सी दूबा

एक चुनौती सा वह काल के लिए अब तक,
दुर्निवार यात्रा पर चला जा रहा अनथक।
पूछो मत साधू से जात-पात–
ग्राम, धाम या सूबा .

पुरबिया क्षितिज पर जो उदित हुआ,
आज तक नहीं डूबा

□□□

वर्द्धमान का मुक्ति-मार्ग

☐ श्री माणकचन्द कटारिया

निर्वाण कोई फिनामिना-चमत्कार है, नही है, एक प्रक्रिया है। उसका सम्बन्ध जीवन से है, मृत्यु से नही। वह मुक्ति का अन्तिम चरण है, एक ऐसी अवस्था जब शरीर और आत्मा एकमेव हो जाते है। आत्मा और शरीर महज जुदा-जुदा हों, एक-दूसरे से छूट जाये तो उसे हम मृत्यु कहते है और मात्र मृत्यु से अगर मुक्ति मिलती हो तो फिर आत्महत्या से ही काम चल जायेगा। एक-एक भूकम्प से हजारों को मुक्ति मिल जायेगी। महायुद्धों से अब तक कितनो का ही निर्वाण हो गया होता। पर ऐसा होता नहीं—मृत्यु और मुक्ति दो अलग रास्ते है। जो जीता है वही मुक्ति के द्वार भी खोलता है और खोलते-खोलते जब वह सारे द्वार खोल चुका होता है, अपने सारे बन्धन काट चुका होता है तब वह निर्वाण-पद को प्राप्त करता है। महावीर ने वही किया। उसने जीवन जीया और इस तरह जीया कि वह मुक्त होता गया और अन्त में देह के बंधन से भी मुक्त हो गया। उसकी पुण्य-तिथि हमारे लिए **'निर्वाण महोत्सव'** का दिन है—मुक्ति पर्व है।

हम इसमे मनुष्य का पराक्रम देख रहे है, महावीरत्व देख रहे है। महावीर को इसलिए नही पूज रहे कि उसने मुक्ति प्राप्त की, बल्कि वह इसलिए हमारा आराध्य है कि उसने मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दिखलाया। उसे सही जीवन जीने का बोध दिया, हौसला दिया। महावीर ने खोज की, देखा, परखा और जिन बन्धनों में मनुष्य खुद के ही कारण जकड़ा हुआ है उन्हें तोड़ा और तोड़ते चला गया। बन्धन उससे छूटते गये। बस इतना ही होता तो वे हमारे लिये केवल एक 'तीर्थकर' होते—हम उन्हें 'युग-प्रवर्तक' के रूप मे संभवतः नही पहिचानते, लेकिन महावीर ने अपना मुक्तिबोध बांटा। धर्म-जाति-वर्ग की सीमायें लांघकर मनुष्य-मात्र के लिए उन्होने मुक्ति के द्वार खुले कर दिये। वे केवल 'जैनो' के महावीर नही हैं, सारे विश्व के

के महावीर हैं। समूची मनुष्य-जाति के वर्द्धमान (विकासशील) हैं।

मुक्ति किससे ?

इस आत्मजयी से आप पूछ सकते हैं कि मुक्ति किससे ? मनुष्य ने तो अपनी बहुत सी बाधाएँ दूर कर ली हैं। बहुत से संकट पार पा लिये हैं—शक्तियाँ उसके नियन्त्रण में हैं, वस्तुएँ उसके लिए सुलभ हैं उसके मस्तिष्क का इतना विस्तार हुआ है कि वह अपने हर कष्ट का इलाज ढूँढ सकता है, वह निर्माता है, भोक्ता है। जो थोड़ी गड़बड़ी वितरण की, व्यवस्था की, बेकारी की गरीबी और अमीरी के तफावत की है वह भी मिट जाएगी—मनुष्य के ध्यान से बाहर यह बात है नहीं। फिर मुक्ति किससे ? महावीर कहते हैं मुक्ति अपने आपसे। अपनी तृष्णा से, अपने वैर से, अपने क्रोध से, अपने मोह से, अपने विलास से, अपने अहंकार से, अपने प्रमाद से। इनसे मुक्त हुए बिना बाहर के अधिकार-संसार वस्तु-संसार, यश संसार और धन संसार से मनुष्य को समाधान नहीं मिलता। सब कुछ पाकर भी वह बंदी है। मनुष्य बाहर तो बहुत जूझ रहा है। रात दिन इस खटपट में है कि वह पा ले, और-और पा ले। पाये बिना उसे चैन ही नहीं है। अब यह पाने की प्रक्रिया विचित्र है। बाहर प्राप्त करता जाता है भीतर से बन्द होता जाता है। कपाट-पर-कपाट लगते चले जाते हैं। महावीर कहते हैं कि भीतर झाँक कर तो देखो कि तुम हो कहाँ ? बाहर के विस्तार ने मनुष्य की आत्मा को ही कैद कर लिया है। मनुष्य का अन्तर स्वयं नियन्त्र-कक्ष-घिर गया है। उसके जीवन की तज अहिंसा है, पर हिंसाएँ साँस की तरह उसके चारों ओर उग रही हैं। वह सत्य-प्रिय है पर हर साँस के साथ उसे झूठ पीना पड़ रहा है वह करुणा मूर्ति है पर अन्याय सह रहा है और अन्याय कर रहा है, क्यों ? नियन्त्रण-कक्ष का मालिक मनुष्य अब अपने ही नियन्त्रण में नहीं है। वह बाहर बेकाबू होकर दौड़ रहा है। भीतर आत्मा बन्द है और बाहर उसने विश्व-विजय का फतवा पा लिया है। इस विश्व-विजयी मनुष्य के हाथ में आत्मजयी महावीर 'विवेक' थमाना चाहते हैं। विवेकहीन होकर उसने सब कुछ पाया, चाँद तोड़ लाया और सितारे तोड़ने की धुन में है—उस मनुष्य को महावीर आत्मबोध देना चाहते हैं। वे कहते हैं "धर्म कोई बाह्य पदार्थ नहीं है। आत्मा की निर्मल परिणति का नाम ही धर्म है।" पर इसी आत्म-धर्म को मनुष्य ने छोड़ दिया है। वह मुक्ति की आकांक्षा रखता है। मुक्ति की साधना जिस-जिसने की वे सब उसके आराध्यदेव हैं। ढाई हजार वर्ष बाद भी वह बुद्ध का है महावीर का है। ईसा की उन्नीस शताब्दियाँ वह देख चुका है लेकिन मनुष्य ने मुक्ति पराक्रम में भरोसा रखकर भी वह इस मार्ग पर चल नहीं पाया, यह एक कटु सत्य है।

आत्मबोध–एक प्रश्नचिन्ह

चैन भले ही न पाया हो, परन्तु मनुष्य की मुक्ति का पराक्रम उसकी आस्था से कभी ओझल भी नहीं हुआ है। उनकी सारी मिथकीयाँ—पौराणिक कथाएँ—मुक्ति की गाथाएँ हैं। किसने क्या करके मुक्ति पाया इसका रोचक वर्णन उनमें है। यह प्रतीक है मनुष्य की निष्ठा का। भटक रहा है वह बाहर-बाहर, पर जानता है कि मुक्ति के लिए उसे आत्मबोध की सीढ़ी पर पैर रखना होगा। हमारे सारे धर्म-शास्त्र आत्मा और परमात्मा के बढ़िया मेटाफिजिक्स–अध्यात्म ग्रन्थ हैं। सब के पास आत्मतत्व की फिलासफी है–अलग अलग जरूर है–जैन फिलासफी हिन्दू फिलासफी, क्रिश्चियन फिलासफी, इस्लाम फिलासफी आदि-आदि। लेकिन मंजिल सबकी एक ही है कि मनुष्य को अपना आत्मधर्म समझना है और उस पर चलना है। ऐसा किये बिना उसके मुक्ति-द्वार नहीं खुलने के। तत्व मीमांसा के जटिल गणित भी हैं जो द्रव्य, पुद्गल, परमाणु कर्म, गति, पुण्य पाप, निर्जरा संवर आदि की पारिभाषिक शब्दावली के साथ आपके सामने संसार, नर्क और स्वर्ग का व्याप प्रस्तुत करते हैं। सब धर्म वालों के पास अपने अपने धर्म-संस्थान हैं-मंदिर, मठ, गिरजाघर, मसजिद उपासरे, आश्रम आदि आदि। अनन्त हैं एक-एक बस्ती में दस-दस, बीस-बीस। फिर हैं आराधना के अलग-अलग प्रकार। भजन-कीर्तन से लेकर मौन एकान्त ध्यान-धारणा। व्रत-उपवास, प्रदोष, खाने-पीने, रहन

सहने के बेशुमार नियम-उपनियम। जिससे जो सध जाए। यज्ञ, अनुष्ठान, पूजाएँ, मंत्र-तंत्र, जाप की अनेक विधियाँ। इन सब के शास्त्र रचे हुए है और तज्ञ लोग हैं जो आप से यह सारी कवायत शास्त्र-सम्मत करवा सकते है। एक और दायरा भी है–दान-धर्म के विधि-विधान। यहाँ दो और वहाँ लो। वे के संसार का लेन-देन निवटा देतो है। और दान-धर्म के विधि-विधान आपका पारलौकिक लेन-देन निवटाने का दावा करते है।

यह सब इतना है कि मनुष्य की हर साँस के साथ जुड़ गया है। उसके जन्म से लेकर मरण तक बिंध गया है। कितना-कितना समय मनुष्य इन सब में दे रहा है। लगातार धार्मिक अनुष्ठान चलते रहते है, जिससे जो बन जाए, जो निभ जाए। कितनी भक्ति, कितनी आराधना, कितनी साधना, कितना स्वाध्याय-हिसाब की मर्यादा मे आप इसे आँक नही सकेगे, लेकिन इतना करके भी मनुष्य के हाथ कितना आत्म-धर्म लगा? मुक्ति के कितने द्वार उसने खोले? उलझने बढ़ी या घटी? उसका राम उससे मिला क्या? संभवत: आप ये प्रश्न उठाना नही चाहेगे। धर्म के लोकमान्य लीक से हटना भी नही चाहेगे। मै भी आपकी आस्था नही डिगाना चाहता। जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि आराधना, पूजा, भक्ति और साधना का प्रतीक हमारा यह सारा धर्म-व्यापार एक खोज है। मुक्ति की खोज। हरेक को अपनी धर्म-विधि मे पक्का भरोसा है, इतना पक्का विश्वास कि उसे दूसरे की धर्म-विधि पाखण्ड लगती है। हम देख रहे है कि धर्म अनेक है, उनकी शाखा-प्रशाखाएँ अनन्त है, कई जातिया और उपजातियाँ है, सब के अलग-अलग विधि-विधान है, और हरेक का दावा है कि उसका रास्ता ही एक मात्र मुक्ति का सही-साट रास्ता है।

मुक्ति की इस साधना मे एक शक्तिशाली परम्परा और है–'सन्यास-धर्म'। अपनी सासारिकता के साथ जुड़ हुए धर्माचरण से मनुष्य को सतोप नही है। उसे लगता है कि बहुधन्धी रहते हुए जो धर्माचरण वह कर पा रहा है वह अपर्याप्त है और मुक्ति की कठिन चढ़ाई वह तभी चढ सकेगा जब कि वह साधु-सन्यासी बन जाए। इसका भी शास्त्र है। विधि-विधान है। ग्रेडेशन है–श्रेणियां है। धर्म किस्म-किस्म के तो साधु भी किस्म-किस्म के। उनकी वेश-भूषा भी अलग-अलग। कोई गेरुए में है, कोई श्वेत वस्त्रधारी है, किसी के हाथ में दण्ड है, किसी के हाथ में कमंडलु-पीछी–पादरी, बिशप, आर्कबिशप, महायोगी, ध्यानयोगी, एल्लक, छुल्लक, मुनिराज, आचार्य आदि कई ग्रेडेशन हैं। कोई भगवान है, तो कोई महाप्रभु। साधु-समाज की यह हायर आरकी-श्रेणि-बद्धता गृहस्थो से किसी कदर कम नही है। मानो साधु जीवन भी विश्वविद्यालय की डिग्री हो–ग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएट, पीएच.डी.। मुक्ति के कितने द्वार खोल लेने पर प्रथम श्रेणी की साधुता हाथ लगेगी, यह गणित अभी बाकी है। जो भी हो, साधु-परम्परा का मनुष्य कायल है। उसका दृढ विश्वास है कि मुक्ति-मार्ग की यह एक ऐसी मंजिल है जिसे तय किये बिना आत्मधर्म सधेगा नही। सब तो सन्यास ले नही पाते, यह सौभाग्य कुछ को ही मिलता है।

यहा मै उस साधु-जमात की बात नहीं कर रहा जो महज वेशधारी साधु है। ऐसी जमीात के लिए कबीर ने यह कहकर छुट्टी पायी कि 'मूड मुंडाये हरि मिले, सब कोई लेय मुंडाय'। मै उन कापालिकों की भी बात नही कर रहा जो भूत-प्रेत जगा रहे है और नर-बलि व पशु-बलि मे मुक्ति ढूंढ़ रहे है। उनका श्मशान-जागरण आत्म-प्रकाश से बहुत दूर है। मैं बात तपधारियो की कर रहा हूँ, जिन्होने गृहस्थ जीवन से अलग हटकर मुक्ति की राह मे साधुता स्वीकारी है। वे नि:स्पृह, निराकुल, वीतरागी है। वे जितेन्द्रिय है और अपने ही राग-द्वेप, तृष्णा, मोह से लड़ रहे है। सब तरह का परीषह सहते हुए सम्यक् तत्व को आराधना मे लगे हुए हैं। वे श्रद्धेय है, परम आदरणीय है, अपने-आप में एक सस्थान है। उनके चरणों में शत-शत प्रणाम।

दिशा भ्रम

इस तरह महावीर के बाद, बुद्ध के बाद, ईसा के बाद–अपने-अपने अनेक आराध्य देवों के बाद मुक्ति को दिशा मे मनुष्य चलता ही रहा है। न जाने कितनी सीढ़ियां अपने-अपने तीर्थो की वह चढ-उतर गया। शंख-पर-शंख उसने फूके, घंटियां बजायी, प्रभु के चरणों में बैठ-बैठकर मालाएँ जपी, पवित्र-पावन जल-धाराओं

मे स्नान किया, साधु-स्वागत की, आरतियां उतारी, प्रार्थनाएं की। सूर ने तो अपने पतित-पावन प्रभु से कहा कि, 'मोसौं कौन कुटिल खल-कामी'—अब तो तारो प्रभु। पर मनुष्य नहीं तरा। मनुष्य की हर नयी पीढ़ी यही कहती रही है कि उसके पुरखे अधिक मनुष्य थे। वे दयालु थे, धमालु थे, और अपने ईमान पर दृढ़ थे। इतनी प्रबल मन्दिर-परम्परा और साधु परम्परा के बावजूद आत्मधर्म मनुष्य के हाथ से फिसल फिसल गया है। बाहर से वह भरा है, भीतर मे खाली हुआ है। ये दोनों परम्पराएँ—पूजा अर्चना की मंदिर-परम्परा और संसार-त्याग की साधु-परम्परा अधिक व्यापक बनकर भी मनुष्य को आत्मजयी नहीं बना सकी।

कहीं ऐसा तो नहीं कि घरकूच, घर-मंजिल हम जिस राह पर चल रहे हैं वह मुक्ति का मार्ग ही न हो? कहीं हम गुमराह तो नहीं हो गये हैं? मनुष्य आज जो जीवन जी रहा है उसमें तो तृष्णा बलवान हो रही है, दुष्पना हो रहा है और माया पी-पी कर भी उसकी प्यास बढ़ती ही जा रही है। प्रश्न यह भी है कि मनुष्य जीवन जी रहा है, या बटोर रहा है? कुछ ने तो जीवन छोड़ दिया है और वे साधु हो गए हैं। जिन्होंने जीवन छोड़ा नहीं वे बटोर रहे हैं—दोनों हाथों से बटोर रहे हैं। मुक्ति के लिए तो जीवन जीना होगा—न छोड़ने से बात बनेगी, न बटोरने से। मुक्ति का रास्ता नेगेटिव्ह/निषेधात्मक नहीं है। वह पाजिटिव्ह—स्वीकारात्मक है। जब मैं करुणा करता हूँ तो मेरी तृष्णा अपने आप घटती है। जब मैं प्रेम करता हूँ तो मेरा क्रोध पिघलता है। जब मैं देता हूँ तो मेरा परिग्रह टूटता है और माया के पंजे ढीले पड़ते हैं। 'वष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीड पराई जाणे रे'—पराई पीड़ में सहभागी बनने से उसका उपकार होगा या नहीं, पर मेरा अहंकार तो निश्चित रूप से गलेगा। लेकिन यह होगा कब, जब मैं अपने चारों ओर बहने वाले जीवन में कूदूंगा उससे भागूंगा नहीं। यों अपने चारों ओर के जीवन में रस लेकर डुबकियां लगा रहा हूं पर बटोरने के लिए। बटोरता हूं और दौड़ कर मंदिर में पहुंचता हूं कि 'प्रभु बचाओ मेरो भव बाधा हरो।' अब बचाना है तो बाहर हो बचना है। जीवन जी जी कर बचना है। जो जहां है जिन लोगों के बीच है जिन परिस्थितियों में है उसी में समरस होकर उसे विवेकपूर्वक जीवन जीना है, तभी मुक्ति की साधना होगी। जीवन से कतराकर आप निकल जाए, तब भी बात नहीं बनेगी। शुद्ध सही, निस्पृह जी कर जाएंगे तो मुक्ति हाथ लगेगी। यही सम्यक्त्व है।

मुक्ति मार्ग

आत्मजयी महावीर अपने बन्द कपाट खोलते खोलते मनुष्य का यह आत्मधर्म समझ गये थे। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन को मुक्ति से जोड़ा। वे कहते हैं —

'विवेक से चलो, विवेक से खड़े होओ, विवेक से उठो, विवेक से सोओ, विवेक से खाओ, विवेक से बोलो, तो फिर मनुष्य बने रहने में कोई कोर-कसर नहीं।' इन पांच कारणों से मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाता—अभिमान, क्रोध, प्रमाद, अस्वास्थ्य और आलस्य।'

'क्रोध को अक्रोध से, अभिमान को नम्रता से, कपट को सरलता से और लोभ को संतोष से जीतना चाहिये।'

'श्रेष्ठ जीवन की पांच माताएं हैं—अप्रमत्त चल, मयत बोल, निर्दोष खा, सावधान रह, निर्मल बन'।

'मोह-माया को कृश करें, केवल शरीर को कृश करने से कुछ भी नहीं होगा।'

'आत्मा इसी शरीर में उपलब्ध है उसका अन्वेषण कर, अन्यत्र क्यों दौड़ता है।'

पर हम महावीर के निर्वाण से इतने आत्म-विभोर हैं कि उनकी जय-जयकार कर रहे हैं उनकी बात सुन नहीं रहे हैं। वे मनुष्य को मनुष्य बने रहने की सीख देते रहे। उनकी अहिंसा पूजा-पाठ और मंदिर की चीज नहीं है। मनुष्य और मनुष्य प्रकृति और मनुष्य, प्राणि-जगत् और मनुष्य के बीच की वस्तु है—जीने की एक प्रक्रिया है। वह हमारे जीवन के एक-एक पल में, हमारी हर सांस में, हमारे हर व्यवहार में उतरनी चाहिये।

पर हम जो महावीर के हैं जीवन जी ही नहीं रहे, जीवन बटोर रहे हैं या फेर रहे हैं और मन्दिरों में जा-

जाकर उन दरवाजो पर दस्तक दे रहे है जो बन्द है। महावीर को हमने घर से वाहर कर दिया, बाजार से निकाल दिया, मनुष्य के सामान्य जीवन से भगा दिया, व्यापार-व्यवसाय मे रहने नही दिया—हे भगवन्! आप यहा कहा? यहां तो हम रहते है, चलिये आप मदिर मे विराजिये। हम वही आपको पूजेगे, भजगे, आरती उतारेंगे, कलश करेंगे, आपकी वाणी पढ़ेगे। हमसे अच्छा श्रावक कौन? हम व्रत रखेगे। बाहर तो ससार है, वहा वह सब चलेगा जो तुम्हे पसन्द नही था, जिसे तुम मुक्ति का रोडा समझते थे।

हमारे त्यागी-तपस्वी साधुमना, भी वाहर का जीवन फेंककर अपने आपमे बन्द हो गये है। ससार असार है, उसे वहने दो जैसा वहता है। आत्मधर्म यहा भीतर खोजेगे। आपकी हिसा से, द्वेष से, मोह-माया से, दुराचरण से, धोखा-फरेबी से हमे क्या लेना-देना—हम ठहरे साधु। इन सब मे पड़े तो हमारी आत्म-साधना में बाधा पड़ती है।

… और इस तरह हम सिमिट कर अपने-अपने घेरों मे कैद है। दो समानान्तर रेखाओं पर टूटकर चल रहे है। मनुष्य का ससार केवल उसके शरीर का विस्तार नही है. वह आत्मा से उतना ही जुड़ा है, जितना मनुष्य स्वय आत्मा से जुडा है। मुक्ति के साधक मनुष्य को ५८ न ५६. दिन अपने पूजा-घर से, अपने गेरुए से, अपनी पीछी-कमण्डलु से बाहर निकालना होगा और अडिग चट्टान की भाति उस हिसा से जूझना होगा, जो मनुष्य को लील रही है। उस वैर से निपटना होगा, जो मनुष्य को खा रहा है। उस अहकार से लोहा लेना होगा जिसने अपने आतंक मे मानवता को ही चौपट कर दिया है। और तभी हम अपने महावीर का निर्वाण सार्थक कर सकेंगे, मुक्ति की सही मजिल पा सकेंगे। □

अशुभ से शुभ अधिक शक्तिशाली है!

'अशुभ से शुभ की शक्ति कही अधिक है। धूमिलता से प्रकाश कही तीव्रगति से आता है। एक शीशे को ले लीजिये। इसको धूमिल होने मे काफी समय की अपेक्षा है। एक-एक करके धूल-कण उस पर जमते चले जाते है, तब जाकर वह काफी देर मे कही धूमिल हो पायगा। परन्तु उसको स्वच्छ एव उज्ज्वल करने मे अधिक समय नही लगेगा। वस, जरा दवाव से उस पर हाथ फिराइए कि उसकी स्वच्छता उभर आती है। इसलिए शुभ्रता अधिक शक्तिशाली है, धूमिलता की अपेक्षा। मनुष्य वस्त्र का उपयोग करता है। शनै. शनै. कुछ दिनो अथवा सप्ताहो मे जाकर वह मलिन हो पाता है, पर उसे स्वच्छ करने मे कितना समय लगता है? वस, आधा घन्टा लगा, धोया और साफ। आत्मा के सम्बन्ध मे भी कुछ ऐसा ही है। आत्मा भी ऐसे ही है। आत्मा भी ऐसे ही शुद्ध एवं पवित्र होती है। इसलिए अशुभ मे शुभ की शक्ति बडी है। मलिनता की अपेक्षा शुभ्रता शीघ्रता से आती है।'

—उपाध्याय अमरमुनि

जैन परम्परा में मानव सेवा

□ चादमल सीपाणी
19, विनय नगर, अजमेर

जन धम मे सेवा को मुख्य स्थान दिया गया है। भगवान महावीर के पच महाव्रतो-अणुव्रतो मे सेवा का प्रमुख स्थान है।

सेवा का तात्पय है—प्रत्येक जीव की सहायता करना जिससे उसे शाति मिले।

अन्य धर्मों मे भी सेवा की महत्ता पर बल दिया गया है। गो तुलसीदासजी ने भी कहा है कि—

'पर हित सरिस धम नहीं भाई।
पर पीडन सम नही अधमाई ॥'

इसी प्रकार जैन धर्म मे सेवा के सम्बन्ध मे लिखा है कि—

दया धम की वलडी, दया सुगाणी खान।
घणा जीव मोक्ष गया, दया तणो फल जान ॥'

व्यवहार मे भी कहते हैं कि—

'करे सेवा, पावे मेवा'

इन सब का निष्कर्ष यह है कि सेवा का अपना विशेष महत्त्व है।

हमारे श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका हमेशा से ही सेवा काय मे अग्रणी रहे हैं। जन दशन का मूल ही अहिंसा है। अर्थात किसी को पीडा नही पहुचाना, दूसरा की सहायता करना।

जन दशन कहता है कि सभी जीवो को अपने समान समझो, आत्मवत समझो। तुमको दुख अप्रिय है उसी प्रकार अन्य जीवो को भी कष्ट अप्रिय है। इसी को लक्ष्य मे रख कर साधको ने आवश्यकता पडने पर अपने प्राणो का बलिदान कर दूसरे प्राणियो की रक्षा की है।

जैन धम मे मानवता का व्यवहार अनिवाय है। इसके अवलबन से ही साधक आगे बढ सकता है। शास्त्र

श्रवण आदि की तुलना में मानवता के व्यवहार को अधिक महत्व दिया गया है। अर्थात् पवित्र जीवन-यापन के लिए मनुष्यत्व-मानवता का होना अति आवश्यक है।

हिंसक पर पीड़क, शोषण करने वाला श्रावक-गृहस्थ साधक की श्रेणी मे नही आ सकता।

जैन धर्म मे तपस्या में भी सेवा को प्रमुख स्थान दिया गया है जिसका नाम है वैयावच्च। सही रूप में वैयावच्च करने वाला मुक्ति को प्राप्त करता है।

अहिंसा, अपरिग्रह, प्रामाणिकता, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि महाव्रतो-अणुव्रतो मे सेवा का अग्रिम स्थान है। ये सब व्रत आध्यात्मिकता की भूमिका का निर्माण करते है।

शास्त्रों मे बताया है कि—

'जिसने दीन दुखियों की मदद नही की, साधर्मी-वात्सल्य नही किया और श्रद्धापूर्वक वीतराग को धारण नही किया, उसने अपना जीवन निरर्थक खो दिया।' इससे स्पष्ट है कि मानव सेवा कितनी मूल्यवान है।

सेवा के हम तीन भाग कर सकते है।

(1) क्षणिक सेवा अर्थात तन, मन, धन से कुछ समय के लिए मनुष्य-जीवो के अभाव की पूर्ति यानी अन्न, जल, वस्त्र आदि की सहायता।

(2) स्थाई सेवा अर्थात उद्योग, कला, विद्या सिखा कर जिससे मानव जीवन पर्यंत लाभ उठाता रहे।

(3) आध्यात्मिक सेवा यानी इससे स्वयं का तो कल्याण हो ही साथ में दूसरों का भी कल्याण हो। यह सब से श्रेष्ठ सेवा है। तात्पर्य यह कि जैन धर्म में मानव सेवा को प्रमुख स्थान दिया गया है। हमारे यहां इस बात का उल्लेख है कि—

'सो धम्मो जत्थ दया, दसट्ठदोसा न जस्ससे सेवा।'

अर्थात् धर्म वहा है जहां दया है जिसमें अठारह दोष नही वह सेवा है।

'जहा सेवा नही वहां धर्म नहीं', यह उक्ति प्रत्येक जैन को—मानव को प्रेरणा देती है।

इसी से प्रेरित होकर समाज के कतिपय महानुभाव व्यक्तिगत, सामाजिक, ट्रस्ट, सस्था आदि के माध्यम से दीन दुखियो, गरीबो, जरूरतमंदों, पीडितों आदि के लिए सेवा कार्य कर रह ह।

वास्तव मे उसी व्यक्ति का जीवन सफल है, जिसने सेवा का व्रत लिया है।

□

जीवन पथ

ज्ञानी वह है कांटो को जो,
फूलो मे बदला करता है।
घोर अमा के काले तम को,
पूनम-सा उजला करता है।।

महावीर के सिद्धान्त : आज के सन्दर्भ में

□ डॉ० श्रीमती शा ता मानावत
[प्रिंसिपल, श्री वीर बालिका कालेज, जयपुर]

आज व्यक्ति, परिवार, समाज और विश्व सभी युद्ध की विभीषिका मे अशान्त और भयग्रस्त हैं। शीतयुद्ध और गृहयुद्ध की यह चिनगारी कभी भी विश्व-युद्ध का रूप ले सकती है। इतिहास के पृष्ठ जन-सहार और रक्तपात मे भरे पडे हैं।

राजनीति वेत्ताओ का कहना है कि जो राष्ट्र अर्थ, शस्त्र और धन धान्य मे समर्थ होता है वह सदैव कमजोर राष्ट्र को दबाने की कोशिश करता है। जिसकी लाठी उसकी भैंस, वाला सिद्धात आज भी अन्तर्राष्ट्रीय मच पर अपना प्रभाव दिखाता हुआ परिलक्षित होता है।

हिंसा से वैर बढता है। आज जो अशक्त है बलवान उसे दबाता है। वह कमजोरी के कारण उसका प्रतिकार नही कर पाता पर जब भी वह सशक्त होगा, अपना प्रतिशोध अवश्य लेगा। इससे हिंसा-प्रतिहिंसा की शृ खला बढती चली जायेगी और इस क्रम मे प्राणियो की हत्याए होगी, व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति का ह्रास होगा, और मानव सभ्यता का सम्पूर्ण विकास नि शेष हो जायगा। इस हिंसाजन्य क्रूर प्रवृत्ति से बचने के लिए भगवान् ने अहिंसा के मार्ग को ही श्रेष्ठ उपाय बतलाया है।

१ अहिंसावाद —

एक समय था जब दुनिया बहुत बडी थी आज वैज्ञानिक प्रगति और तकनीकी विकास ने समय और स्थान की दूरी पर विजय प्राप्त कर दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है। परिणाम स्वरूप दुनिया के किसी भी भाग मे घटित साधारण सी घटना का प्रभाव भी पूरे विश्व पर पडता है।

आज दो राष्ट्रो की लडाई केवल उन्ही तक सीमित नही रहती। उससे विश्व के सभी राष्ट्र आन्दोलित

हो उठते है और जन-मानस अशान्त और भयभीत हुए विना नही रहता । भगवान महावीर ने वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भय-मुक्ति के लिए अहिसा सिद्धान्त का उद्घोष किया। उन्होने वड़ी दृढता के साथ कहा—'सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता।' सबको अपना जीवन प्रिय है। मनुष्य तो क्या उन्होने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति के जोवो की रक्षा करने तक की पहल की है। अखण्ड सृष्टि के प्रति यह प्रेमभाव ही विश्व-शाति का मूल है।

महावीर का अहिसा-सिद्धांत बड़ा सूक्ष्म और गहन है। उन्होने किसी प्राणी की हत्या करना ही हिसा नही माना। उनकी दृष्टि मे मन मे किये गये हिसक कार्यो का समर्थन करना भी हिसा है। यदि व्यक्ति अहिसा की इस भावना को किचित् भी अपने हृदय मे स्थान दे दे तो फिर अशांति और आकुलता हो ही क्यो ?

2. समतावाद:—

अहिसा सिद्धांत का ही विधायक तत्व है समता, विषमता का अभाव। दुनिया में कोई छोटा-बड़ा नही है सभी समान हैं। समतावाद के इस सिद्धात द्वारा महावीर ने जातिवाद, वर्णवाद और रगभेद का खण्डन किया और वताया कि व्यक्ति जन्म या जाति से बड़ा नहीं है। उसे वड़ा वनाते है उसके गुण, उसके कर्म ।

कम्मुणा वंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो होइ कम्मुणा।

अर्थात् कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और और शूद्र बनता है। महावीर के समय मे वर्ण-व्यवस्था वड़ी कठोर थी। शूद्रो को समाज मे अधम और निकृष्ट माना जाता था। नारी की भी यही स्थिति थी। उसके लिए साधना के मार्ग वन्द थे। महावीर ने इस व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति की। उन्होंने हरीकेशी जैसे चाडाल को अपने मुनिवर्ग मे दीक्षित किया और चन्दनवाला जैसी नारी को दीक्षित ही नही किया वरन् साध्वी सघ का सम्पूर्ण नेतृत्व भी सौपा। वे स्वयं क्षत्रिय थे पर उनके अनुयायियो मे ब्राह्मण; वैश्य, शूद्र सभी सम्मिलित थे। उन्होंने कहा—

न वि मुंडिएण समणो; न ओंकारेण वंभणो ।
न मुणी रण्णवासेणः कुसचीरेण न तावसो ।।
समभाए समणो होइ, वंभचेरेण वंभणो ।
नाणेय य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।

अर्थात् सिर मुंडाने से कोई श्रमण नही होता, ओंकार के उच्चारण से ब्राह्मण, वन मे वास करने मात्र से मुनि और कुसचीर धारण करने से तापस नही वन जाता, परन्तु समभाव रखने से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तपाराधन से ही तापस वनता है।

महावीर के इस समता-सिद्धांत की आज भी विश्व को वडी जरूरत है। भारत मे वर्ण व्यवस्था मे आज भले ही थोड़ी ढील आई हो पर दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका मे काले-गोरे का भेद आज भी जारी है। नीग्रो आज भी वहां हीन दृष्टि से देखा जाता है। धर्म, सम्प्रदाय और जाति के नाम पर आज भी विश्व मे तनाव और भेद भाव है। यदि महावीर के इस सिद्धान्त को सच्चे अर्थो मे अपना लिया जाय तो यह विश्व सवके लिए आनन्दस्थली और शातिधाम वन जाय।

3. अपरिग्रहवाद

20वी शताब्दी मे शांति का क्षेत्र वडा व्यापक हो गया है। आज व्यक्तिगत शाति के महत्व से अधिक महत्व विश्वशाति का है। इस सामूहिक शाति की प्राप्ति के लिए मानव ने अनेक साधन ढूढ निकाले है लेकिन अव तक उसे शाति नही मिल पाई है। इसका मूल कारण है—आर्थिक वैपम्य। आज विज्ञान से लदे भौतिकवादी युग मे रोटी-रोजी, शिक्षा-दीक्षा के जितने भी साधन है उन पर मानव समाज के कुछ इने गिने व्यक्तियो का अधिकार है जो निर्दयी और स्वार्थी वन कर अपने धन के नशे मे दूसरो का शोपण करते है। इस विपम स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए प्रगतिशील कवि श्री रामधारीसिह 'दिनकर' ने लिखा है—

स्वानो को मिलता दूध वस्त्र,
भूखे वालक अकुलाते है।
मा की हड्डी से चिपक ठिठुर,
जाड़ो की रात विताते है ।।

युवती की लज्जा वसन बिक,
जब व्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तन कुत्तों पर
पानी सा द्रव्य बहाते हैं।।

तब सचमुच क्रांति आती है। यह क्रांति हिंसक भी हो सकती है और अहिंसक भी। इस क्रांति प्रक्रिया की विवेचना में साम्यवाद, समवाद, समाजवाद, आदर्शवाद, व्यक्तिवाद, अराजकतावाद आदि कई वाद सामने आये पर वे समस्या के मूल को नहीं पकड़ पाये। किसी में एक पार्टी का हित है तो किसी में रक्तपात, किसी में अन्यावहारिकता है तो किसी में ख्याली पुलाव। पर भगवान महावीर ने इस विषमता को दूर करने का जो सूत्र दिया, वह आज भी प्रभावकारी है। उनका यह सिद्धांत अपरिग्रहवाद के नाम से जाना जाता है।

अपरिग्रहवाद से तात्पर्य है—ममत्व को कम करना, अनावश्यक संग्रह न करना। संसार में झूठ, चोरी अन्याय, हिंसा, छल, कपट आदि जो पाप होते हैं उनके मूल में व्यक्ति की परिग्रह बढ़ाने की भावना ही है। अधिकाधिक उपार्जन की प्रबल इच्छा है। इस प्रबल इच्छा को सीमित रखना ही अपरिग्रह है।

मानव की तृष्णा का अन्त नहीं है। चाहे उसे संसार का समस्त ऐश्वर्य भी मिल जाय फिर भी उसकी इच्छा और अधिक प्राप्त करने की रहेगी। प्रभु महावीर ने कहा है—

सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।

अर्थात् सोने और चांदी के असंख्य कैलाश भी खड़े कर दिये जायें तो भी व्यक्ति के लिए वे पर्याप्त नहीं होते क्योंकि इच्छाएं आकाश के समान अनन्त होती हैं। इन अनन्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव किंकर्तव्य विमूढ़ हो रात दिन परिश्रम करता ही रहता है। तब उसे न स्वयं के स्वास्थ्य की चिन्ता रहती है न परिवार की। उसका मस्तिष्क अशांत बना रहता है, वह रात दिन अधिकाधिक धन संग्रह किया करे। इसी चिन्ता में लगा रहता है।

जिस व्यक्ति के पास कुछ नहीं होता वह यह सोचता है कि किसी प्रकार जीवन यापन योग्य सामग्री मिल जाय तो बस। जब इतना मिल जायेगा तो यह सोचेगा कि कुछ धन इतना और मिल जावे कि यदि भविष्य में बीमार पड़ जाऊं, कुछ काम करने की क्षमता न रहे तब भी अपना जीवन निर्वाह आसानी से कर सकूं। इतना धन संग्रह कर लेने पर उसकी इच्छा वैभवपूर्ण जीवन जीने की होगी जिससे उसके पास कार हो, बंगला हो, विलासिता की सामग्री हो। इतना कर लेने पर वह अपने परिवार के सब सदस्यों के निमित्त पीढ़ियों के लिए धन संचय की कल्पना करने लगता। इन सीमा रहित इच्छाओं की पूर्ति में व्यक्ति बना रहकर मन शांति का आराम क्षण भी नहीं पाता। उसका रात की शांति खोती रहती है। इस प्रकार वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सदा परेशान बना रहता है।

इन इच्छाओं पर अंकुश लगाने का एक बहुत ही सरल उपाय भगवान महावीर ने बताया। उन्होंने कहा आवश्यकता से अधिक संग्रह मत करो। अपनी आवश्यकताओं को सीमित बनाओ। यदि व्यक्ति अपनी आवश्यकताएं सीमित कर लेगा तो उसकी इच्छाएं स्वतः सीमित हो जायेंगी।

विज्ञान की उन्नति से यद्यपि आज वस्तुओं का उत्पादन कई गुना बढ़ गया है तथापि उनका अभाव ही अभाव परिलक्षित होता है। आज भी बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके पास खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र सुलभ नहीं हैं। कारण कि मानव समाज और राष्ट्र की संग्रह वृत्ति ने कृत्रिम अभाव पैदा कर दिया है। आज का व्यक्ति बड़ा लोभी है। वह वस्तुओं का संग्रह कर बाजार में उसका अभाव देखना चाहता है। ज्योंही वस्तुओं का अभाव हुआ कि उनकी कीमतें दुगुनी तिगुनी बढ़ जाती हैं। बढ़ी हुई कीमतों को प्राप्त कर वह लखपति और करोड़पति बनना चाहता है। वस्तुओं के अभाव से उत्पन्न हुई अपने ही भाइयों की परेशानियों

को वह बिल्कुल भी चिन्ता नही करता। आज गोदामों में पड़ा लाखों टन अनाज यों ही सड़ जाता है। विदेशों मे भी अतिरिक्त खाद्यान्नो को इसलिये जला दिया जाता है अथवा नष्ट कर दिया जाता है कि बाजार का निर्धारित भाव घट न पाये।

आवश्यकता से अधिक वस्तुएं एक स्थान पर संग्रहित न की जाये तो वे सबके लिये सुलभ हो जायेगी फिर पूंजीवाद और साम्यवाद के नाम से जो विरोध और सघर्ष आज चल रहे है, वे स्वतः ही समाप्त हो जा येगे

भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा-अशांति का मूलकारण वस्तु के प्रति ममत्व एवं आसक्ति का होना है। संग्रहीत वस्तु पर किसी प्रकार की आच नही आये, उसे कोई लेकर नही चला जाय, इस चिन्ता से उसके संरक्षण और संवर्धन की भावना पैदा होती है। अन्य व्यक्ति उस वस्तु को लेना चाहेगा तो उससे सघर्ष होगा। फलस्वरूप युद्ध होगा, रक्तपात होगा और अशाति बढेगी।

जिन व्यक्तियो या वस्तुओं के प्रति आसक्ति का भाव आ गया है उसके संरक्षण और सवर्धन के लिए, दूसरो का अहित करना, झूठ बोलना, कपट करना, चोरी करना, दूसरों के रागद्वेप रखना आदि कुप्रवृत्तियो का वढ़ना स्वाभाविक है। ये ही प्रवृत्तियां अशाति को जन्म देती है।

संसार मे कोई भी व्यक्ति न कुछ साथ लेकर आता है न कुछ साथ लेकर जाता है, फिर अर्जित वस्तुओ पर इतनी ममता क्यों? तृष्णा व हाय-हाय क्यो? सघर्ष व द्वेप क्यो? वस्तुये सभी यही पड़ी रहेगी, हमे सब यही छोड कर जाना है, जीवन क्षणभगुर है। न मालूम कब मृत्यु आ जाय। अत. हमे ममत्व भाव को छोड़ समभाव को अपनाना चाहिये। यही समत्व भाव भगवान महावीर का अपरिग्रहवाद है।

जब यह समत्व भाव मन मे आयेगा तब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने की कोशिश नही करेगा, उसे अपना उपनिवेश नही बनायेगा, तानाशाह बनकर वहा के जन-धन का संहार नहीं करेगा। किसी को अपने आधीन रखने की भावना उसमें जन्म नही लेगी। सभी स्वाधीन है। वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने व्यक्तित्व का विकास करे। ऐसी सर्वहितकारी भावना से निश्चय ही विश्वशांति को बल मिलेगा।

कार्ल मार्क्स ने भी आर्थिक वैषम्य को मिटाने के लिए वर्ग-संघर्ष और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। पर मार्क्स की विवेचना का आधार भौतिक पदार्थ है, उसमे चेतना को नकारा गया है जबकि महावीर की विवेचना चेतना मूलक है। इसका केन्द्रबिन्दु कोई जड पदार्थ नही, बरन् व्यक्ति स्वयं है।

4 अनेकान्तवाद

अशान्ति का एक मुख्य कारण हठवादिता, दुराग्रह और एकान्तिकता है। विज्ञान के विकास ने व्यक्ति को अधिक बौद्धिक और तार्किक बना दिया है। वह प्रत्येक तर्क को विज्ञान को कसौटी पर कस कर उसे ही सही मानने का दभ भरता है। दूसरो के दृष्टिकोण को समझने का वह प्रयत्न नही करता। इस अहं भाव और एकान्त दृष्टिकोण से आज व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र सभी पीडित है, इसीलिए उनमे संघर्ष है, सौहार्द का अभाव है।

भगवान महावीर ने इस स्थिति से विश्व को उबारने के लिए अनेकान्तवाद (सिद्धान्त) का प्रतिपादन किया। उनका कहना है कि प्रत्येक वस्तु के अनन्त पक्ष है। उन पक्षो को उन्होने धर्म की संज्ञा दी। इस दृष्टिकोण से ससार की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। पदार्थ को अनेक दृष्टियो से देखना, किसी भी वस्तुतत्व का भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से पर्यालोचन करना अनेकान्त है।

अनन्तधर्मात्मक वस्तु को यदि कोई एक ही धर्म मे सीमित करना चाहे, किसी एक धर्म के द्वारा होने वाले ज्ञान को ही समग्र वस्तु का ज्ञान समझ बैठे तो यह वस्तु को यथार्थ स्वरूप मे समझना न होगा। सापेक्ष स्थिति मे ही वह सत्य हो सकता है, निरपेक्ष स्थिति मे नही। हाथी को खम्भे जैसा बतलाने वाला व्यक्ति अपनी दृष्टि से सच्चा है, परन्तु हाथी को रस्सा जैसा

कहने वाले की दृष्टि में वह सच्चा नहीं है। अत हाथी का समग्र ज्ञान करने के लिए, समूचे हाथी का ज्ञान कराने वाली सभी दृष्टियो की अपेक्षा रहती है। इसी अपेक्षादृष्टि के कारण 'अनेकान्तवाद' का नाम अपेक्षा-वाद और स्याद्वाद भी है। स्यात् का अर्थ है—किसी अपेक्षा से, किसी दृष्टि मे और वाद का अर्थ है—कथन करना, अपेक्षा-विशेष से वस्तुतत्व का विवेचना करना ही स्याद्वाद है।

अनेकान्तवाद कहता है कि 'यह वस्तु एकातत ऐसी ही है, ऐसा मत कहो। 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग करो। इससे ध्वनित होगा कि इस अपेक्षा से वस्तु का स्वरूप ऐसा भी है। इस प्रकार के कथन से सघर्ष नहीं बढेगा और परस्पर समता तथा सौहार्द का मधुर वाता-वरण निर्मित होगा।'

भगवान महावीर ने यह अच्छी तरह जान लिया था कि जीवन तत्व अपने मे पूर्ण होते हुए भी वह कई अ शो की अखण्ड समष्टि है। इसी लिए अ शो को सम-झने के लिए अ श का समझना भी जरूरी है। यदि हम अ श को नकारते रहे, उसकी उपेक्षा करते रहे तो हम अ शी को उसके सर्वांग सम्पूर्ण रूप मे नहीं समझ सकेंगे। सामान्यत झगडे, दुराग्रह, हठवादिता और एक पक्ष पर अडे रहने के कारण ही होते हैं। यदि उनके समस्त पहलुओ को अच्छी तरह देख लिया जाय तो कही न कही सत्याश निकल आयेगा। एक ही वस्तु या विचार को एक तरफ से न देख कर उसे चारो ओर से देख लिया जाय, फिर किसी को एतराज न रहेगा।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धान्त को इसी भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। व्यक्ति ही नहीं आज के तथाकथित राष्ट्र भी दुराग्रह और हठवाद को छोडकर यदि विश्व की समस्याओ को सभी दृष्टियो से देखकर उन्हे हल करना चाहें तो अनेकान्त दृष्टि से ससम्मान हल कर सकते है।

महावीर को हुए आज 2507 वर्ष बीत गये हैं पर उनका अहिंसा, समता, अपरिग्रह और अनेकान्त का सिद्धान्त आज भी उतना ही ताजा और प्रभावकारी है जितना उस समय था।

□

विसर्जन मे ही नवनिर्माण है

विसर्जन में ही नव-सृजन के तत्व निहित हैं। नव-सृजन के लिए विसर्जन आवश्यक है। हर नव निर्माण पूर्व का विसर्जन चाहता है। जरा चिंतन में गहरे उतरिए और विचार कीजिए, एक बीज जब तक अपना स्वय का अस्तित्व बनाए हुए है, तब तक वृक्ष के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती। वृक्ष कब अस्तित्व में आता है? जब बीज स्वय का विसर्जन कर देता है पूर्णतया। बीज का विसर्जन हुआ कि वृक्ष का सृजन प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार विसर्जन सृजन के द्वार खोल देता है। विसर्जन से घबराइए नहीं। यह सृजन की पूर्व प्रक्रिया मात्र ही तो है, इसका स्वागत कीजिए। निर्माण के इस प्रारम्भ का नकारने से काम नहीं चलेगा। स्व के अस्तित्व को चिरस्थायी रखने के लिए एक बार तो अस्तित्व को विसर्जित करना ही होगा। बीज को वृक्ष बनने के लिए प्रतीक्षा करनी ही होगी। हो सकता है यह प्रतीक्षा कुछ लम्बी भी हो, परन्तु धीरज को छोडिए नहीं। विसर्जन के बाद सृजन अवश्यम्भावी है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक ही घडी के दो छोर हैं।'

—उपाध्याय अमरमुनि

दस बोध क्षणिकायें

□ दिनकर सोनवलकर
जी–3, स्टॉफ क्वार्टर्स,
शासकीय महाविद्यालय, जावरा (म.प्र.)

क्षमा

संभव है कुपुत्र
किन्तु
असंभव है कुमाता !

सज्जन - दुर्जन
सबके आघातों को चुपचाप
सहती है धरती - माता ।

जब रोम रोम में
रम जाये ऐसी 'क्षमा'

कि जीवन का गणित
कुछ जमा ।
□

मार्दव

उधर फूले वसन्त
इधर बोली कोयल
'कू हू'

मानो कहती है
बिन गाये कैसे रहूं ?

दी है विधाता ने
जो मिठास, 'मृदुता'
उसका सतत गुणगान
यही मेरी कृतज्ञता ।
□

आर्जव

जैसे गहरे
साफ, चमकदार जल में
और भी
सुन्दर, मनहर
झलक उठते हैं बादल

वैसे ही
होना निष्कलंक
तरल 'सरल'
प्रतिबिम्बित होते रहें
आत्मीय-बिम्ब, प्रतिपल ।

□

सत्य

सत्य है राम वनगमन
और
सीता की अग्नि-परीक्षा,
सत्य है
सर्वस्व समर्पण
गोविन्द की गुरु से दीक्षा ।
सत्य है आदमी का मरण
सत्य है
मन वचन कर्म से
प्रभु-स्मरण ।
'सत्य' की गति कब रुकी है ?
असत्य की गर्दन हमेशा झुकी है ।

□

शौच

प्रतिपल
धो रहा है निर्झर
काली चट्टान
हर सुबह
दूब करती है
किरणों में स्नान ।
नाक पर सेन्टभरा रूमाल रखते हो
घबराकर दुर्गन्ध से
भीतर लादे फिरते हो विकार
अन्ध से ।
पवित्रता स्वयं सुगन्ध है
जैसे साध्वी की सौगन्ध है ।

□

संयम

इतने तेज मत भागो
कि गिर पड़ो ठोकर खाकर ।
यहां सीधे रास्ते ही नहीं
टेढ़ो-मेढी गलियां
गहरी खाइयां भी है;
खूब संयम से थामे रहना
वल्गा रथ को
पहचानते रहना
बाधाएं पथ को ।
शब्दो की फिजूलखर्ची
मत करते रहना ।
मौन रहते हुए भी
किया जाता है अभ्यास;
कम बोलकर भी
जगाया जा सकता है
इश्क का एहसास।
कहीं ऐसा न हो
कि जब शब्द का मूल्य
नीलाम पर हो लगा-
तब तुम्हारे शब्द
तुम्ही को दे जाये दगा ।

□

त्याग

तुम बस
खुशबू लुटाओ
दीवानों की तरह ।

ये खयाल मत करो
कि फूल कहां चढ़ते हैं
मजार पर या, मन्दिर में ?

जल्द ही बदल जाता है
कुछ सार्थक रचाने का
मौसम ।

यही पेड़
पत्तों तक को 'त्याग' देगे
पतझर में;
और योगी से खड़े रहेगे
अवधूत ।

□

आकिंचन्य

छोडते चलो ।
जो जितना ही
छोडता चला जाएगा
आकर्षणो की सीढिया
उसे उतना ही
करेंगी याद
आनेवाली पीढिया ।

उपकरणो की आसक्ति का
नही है अन्त
जो हो जाता है 'शून्य'
दर्शन और विज्ञान की
भाषा मे
वही है अनन्त ।

□

तप

ये कोई
चौराहे का आम नही
कि इधर बोया
उधर काटा ।

ये तो
जीवन भर की साधना है
जीवन भर का 'तप' है
तपस्या ही तीरथ है,
जप है ।

□

समत्व

स्वर को सम करो ।
आरकेस्ट्रा का शोर
थोडा कम करो ।
गीत का अर्थ
कही खो न जाए

अहम् को कम करो
उपलब्धियो के प्रतीको को
नमन करना सीखो
श्रद्धा से आखे नम करो ।
यह अहकार
कही अपनी ही राह मे
काटे बो न जाए ।

□

अतीत के सुनहले पृष्ठ

मुन्द्रा (कच्छ) का चमत्कारिक श्री महावीर स्वामी जिन मन्दिर

☐ श्री जयानन्द मुनि
श्री खरतरगच्छ जैन ज्ञानशाला,
काजीनो चकलो, जामनगर

18वी शताब्दी में हुए श्री जिन लाभसूरिजी रचित **'आत्म प्रबोध'** ग्रंथ की जहां पूर्णाहुति हुई और जिनको आचार्य पदवी भी जिस पुण्य भूमि में मिली ऐसी पुण्य भूमि, मुन्द्रा नगरी (कच्छ) जो भद्रेश्वर तीर्थ से सिर्फ 24 कि०मि० दूरी पर है और समुद्र किनारे पर रही हुई है, आज भी चार जिन मन्दिर एवं दादावाड़ी से सुशोभित है। यहा स्थित चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु का जिनालय भव्य आत्माओं को आत्म कल्याण करने के लिए महान निमित्त रूप है। यहां की चरम तीर्थनायक श्री महावीर प्रभु की अमीरस भरपूर सुन्दर मूर्ति का दर्शन करते हुए सहज भाव से हृदय से उद्गार निकल पड़ते है—

अमीय भरी मूर्ति रची रे,
उपमा न घटे कोय।
शात सुधारस झिलतीरे,
निरखत तृप्ति न होय।

इस मन्दिर का भी अपना इतिहास है। लगभग 200 वर्ष पूर्व इस जिन मन्दिर की प्रतिष्ठा खरतर गच्छ के महान् आचार्यश्री के कर कमलों द्वारा हुई थी। मूल नायक श्री महावीर स्वामी की अंजन विधि युग प्रधान चतुर्थ दादा श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर जी के प्रशिष्य श्री जिनराजसूरी जी के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। इन्होने पालीताना मे खरतर वसही एवं लोद्रवा तीर्थ मे श्री चितामणि पार्श्वनाथजी आदि अनेक स्थानों पर भी प्रतिष्ठा करवाई।

कहा जाता है कि आज से 200 वर्ष पूर्व एक महान् यतिवर्य अपने एक शिष्य के साथ मुन्द्रा आये थे। उस समय मन्दिर वना नही था। यतिवर्य मंत्र-तंत्र, ज्योतिप आयुर्वेद आदि के अच्छे जानकार एवं साधक थे। उन्ही की प्रेरणा से यह मन्दिर वना है। मन्दिर के पास में पोशाल मे यतिवर्य अपने शिष्य के साथ रहते थे।

श्रावक समुदाय उनके पूर्ण भक्त थे । उस समय जैन मुनियो का आवागमन रास्ते की कठिनता होने से इधर नही होता था । अत श्रावक समुदाय भी यतिवर्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते थे । यहाँ तक कि कच्छ के महाराजधिराज भी जैन यतियो से बहुत प्रभावित थे ।

एक दिन की बात है । कोई विशेष कार्य होने से जैन सघ धार्मिक महोत्सव मनाने की चर्चा-विचारणा के लिए मन्दिर से थोडी दूरी पर न्याती नोहरा मे एकत्रित हुआ । चर्चा विचारणा मे रात को बहुत देरी हो गई । मीटिंग समाप्त होते ही सब श्रावक अपने घर पर जाने लगे । रास्ता मन्दिर के पास से ही निकलता था । उस समय मदिर का बाहर का दरवाजा खुला था । मदिर मे से स्त्रियो के नाचने, गाने व सगीत की आवाज आ रही थी । श्रावको ने यह आवाज सुनकर विचार किया कि जिस यतिवर्य को हम पूज्य भाव से देखते हैं, वह यति तो चारित्रहीन है । कारण, रात के समय यह औरतो को नचाते हैं । अत निर्णय किया कि आज से इस यतिवर को हम नमन आदि नहीं करेंगे ।

प्रत्येक दिन श्रावक लोग प्रभु पूजन-वदन के बाद यतिवर्य के पास आते थे । उनसे मगलीक सुनकर अपने घर पर जाते थे । लेकिन अब यतिवर्य पर अश्रद्धा आ जाने से कोई यतिवर्य के पास नही जाने लगा । प्रभु के दर्शन करके सब सीधे अपने अपने घर पर जाने लगे । यतिजी को आश्चर्य हुआ कि ऐसा क्या कारण हुआ है, जिससे सघ नाराज है ।

यति के शिष्य गोचरी के लिए पारख शेरी नाम के मोहल्ले मे गये, लेकिन किसी ने भी उन्हे गोचरी नहीं वहराई आखिर यतिजी को पता चल गया कि मदिर का दरवाजा भूल से खुला रह गया था और इस कारण से सघ को, प्रभुजी की भक्ति करते हुए देवियो के गीत-गान सुनकर, हमारे चारित्र पर शका हो आई है । अब इस शका का निराकरण करना चाहिये ऐसा विचार कर उन्होने सघ के मुख्य-मुख्य श्रावको को अपने पास बुलाया और कहा कि आप सब रात को मेरे पास आवें । मेरे को आपको कोई आश्चर्य दिखलाने का है ।

श्रावको को भय लगा, फिर भी सब साथ मे होने से निर्भय होते हुए रात को आने की स्वीकृति दे दी । रात के समय श्रावक लोग आये । यतिवर्य पोशाल के दरवाजे बन्द करके सबको अन्दर वहा ले गये जहा यतिवर्य उपासना करने बैठते थे । सब श्रावको को बैठा कर उनके आगे यतिवर्य ने लकीर खीच दी और कहा कि इस लकीर से बाहर मत निकलना और उसी समय यतिवर्य, अपने पास जो मत्र की प्रति थी, उसको खोल कर, मत्र जाप करने लगे । तत्काल आश्चर्य प्रकट हुआ आकाश से देवियो का आवागमन हुआ और सब देवियां प्रभु भक्ति करने लगी । थोडी देर के बाद यतिवर्य ने सब देवियो को विसर्जित कर दिया । यह सब देखकर श्रावको को आश्चर्य हुआ । सब यतिवर्य के पाव पडने लगे । अपनी गलतियो की क्षमा मागने लगे । उस समय यतिवर्य ने कहा-आपका कोई दोष नही है । भावी-काल बहुत खराब आ रहा है, ऐसा कह कर उन्होने बरतन मे जल मगवा कर श्रावको की मनाई होते हुए भी मत्र की पोथी को जल शरण कर दिया । यतिवर्य ने श्रावको को कहा कि मै मदिर मे गणिका को नही नचाता था लेकिन देवियो को कभी-कभी बुलवा कर प्रभु भक्ति करवाता था ।

पारख शेरी मोहल्ला मे यतिवर्य के शिष्य को गोचरी नही मिली थी, जिसका यतिवर्य को दुख था । कहते हैं कि यतिवर्य ने उस मोहल्ले मे जाकर अपने पात्र को उलटा कर दिया तब से मुन्द्रा शहर मे पारखो का वश प्राय निरवश हो गया ।

आज भी इस मदिर मे कई बार रात को देव देवियो का नृत्य, सगीत, कीर्तन लोग सुनते है ।

ऐसे भव्य मदिर का अभी जीर्णोद्धार हुआ और उसकी पुन प्रतिष्ठा स० 2038 बैशाख सुदी 13 को सानन्द पूर्ण हुई ।

ऐसे प्रभाविक तीर्थ स्वरूप मदिर का दर्शन वदन कर के अपनी आत्मा को कृतार्थ करना चाहिये । □

समय को वास्तव में सार्थक करें

□ साध्वी श्री मणिप्रभाजी
इन्दौर

भगवान महावीर ने गौतम गणधर से कहा—हे गौतम, क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो। यदि हम विचार करे तो ज्ञात होगा कि हमारा समय कितना सार्थक व्यतीत होता है और कितना निरर्थक।

यदि अन्तर अन्वेषणपूर्वक चिंतन करेंगे तो ज्ञात होगा जीवन का अधिकांश भाग ही नहीं अपितु समूचा जीवन ही व्यर्थ व्यय होता है। यहां जो उपदेश दिया गया है, वह हाथ पर हाथ धरके बैठने की अपेक्षा से अथवा निरर्थक बात-चीत में जाने वाले समय की दृष्टि से ही नही है किन्तु आत्मिक जागृति को लेकर उपदेश है कि आत्म विस्मृति रूप प्रमाद न किया जाय। किन्तु खेद है कि जिन शासन को पाकर भी हम विभाव रूप भौतिक पदार्थो की उपलब्धि मे इतने संलग्न है कि जीवन की सार्थकता इनकी प्राप्ति में ही मानते है। हम यह भूल गये कि जितनी दौड़धूप हो रही है वह केवल जीवन निर्वाह के क्षेत्र मे समाविष्ट होती है, जबकि जीवन-निर्माण करना हमारा मुख्य उद्देश्य है जिसकी ओर हमारा कोई लक्ष्य ही नही है।

भगवान् महावीर ही नहीं अपितु आत्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप को मानने वाले महापुरुष यह सिद्धान्त स्वीकार करके चलते है कि आत्मा और शरीर अलग-अलग है। जिस प्रकार म्यान मे तलवार है, भवन में व्यक्ति निवास करता है, उसी प्रकार शरीर में आत्मा रहती है। किन्तु हम शरीर व आत्मा को पृथक मानकर चलने वाले सभी अपना समस्त समय शरीर से सम्बन्धित-क्रियाओ मे ही पूरा कर देते है। बहुत कम व्यक्ति ऐसे होगे जिनके कुछ क्षण आत्म साधना मे व्यतीत होते हो। प्रातःकाल से लेकर रात्रि विश्राम तक हम क्या करते है ? भले हम कितने भी सासारिक सुखों में आनन्द मान रहे हो, किन्तु वे क्षण निश्चित रूप से आने वाले है जब शरीरजन्य, परिवारजन्य समस्त सम्बन्ध,

सत्ता, सम्पत्ति, सुविधा सभी को छोड़ कर जगत से कूच करना होगा। उस समय हमारी आत्मा निकल कर अपने पुरुषार्थ के अनुरूप फल प्राप्ति के लिए नरक, तिर्यंच, या देव, किसी भी गति में चली जायेगी और पीछे वाले उस शरीर को होली की तरह जलाने के लिए जगल में ले जायेंगे और कहेंगे "राम नाम सत्य है।" हम सत्य साक्षात् देखकर स्वयं अपने मुख से सत्य बोलकर भी जीवन को सत पथ की ओर मोड़ देने का प्रयत्न नहीं करते। जबकि हमें सन्त पुरुष सदा उपदेश देते हैं कि बाह्य जड़ शक्ति को शाश्वत न मानो, पुण्य के प्रभाव से प्राप्त पदार्थों में आसक्त मत बनो, ज्ञान दृष्टि से जीवन की नश्वरता को ध्यान में रखते हुए समय को सार्थक करो। जिन्दगी तो क्षण-क्षण समाप्त हो ही रही है हम प्रतिपल मृत्यु की ओर उन्मुख बन रहे हैं किन्तु मानते हैं अन्तिम श्वास की इतिश्री पर मृत्यु।

जिन्हें जीवन विकास की तमन्ना हो, मानवीय गुणों का घर बनाना हो, उनको चाहिए समय का सदुपयोग करे। जिस किसी ने श्वासों की कीमत की, उसी ने जीवन की कीमत की है। उसीने उपदेश को धारण किया है क्योंकि चल क्षणों के संचय का नाम ही तो जीवन है, श्वासोंश्वास का मूल्य किसी भी पदार्थ से नहीं हो सकता, इसीलिए किसी कवि ने कहा है 'तीन लोक की सम्पदा श्वासा सम नहीं होय।"

□

प्रगति-पथ पर बढ़ते चलें

'जीवन का हर मोड़ अनेक खतरों, विघ्नों एवं अवरोधों से भरा पड़ा है। खतरों के भय से हम चलना नहीं छोड़ सकते। अवरोधों से डरकर गति को रोक नहीं सकते। जीवन में कदम-कदम पर खतरों का जाल बिछा है, इसलिए नये मार्ग की खोजना छोड़ दें अथवा नये प्रयोगों की जोखिम को तिलाञ्जली दे दें, यह असम्भव है। इससे तो विकास के, प्रगति के द्वार ही बन्द हो जाएंगे। प्रगतिशील विचारों को तथा किसी भी नव प्रयोग को क्रियान्वित करने के लिए जोखिम तो लेनी ही होगी। प्रयोग जितना बड़ा होगा, खतरा भी उतना ही बड़ा होगा। यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि जोखिम जितनी बड़ी होगी, उपलब्धि भी उतनी ही महान् होगी। इसलिए प्रगति के रास्ते में आनेवाली भयंकर परिस्थितियों से भयभीत न हों अपितु उनका सहर्ष स्वागत करें, उन्हें हृदय से स्वीकार करें। उनके ही द्वारा नये आयाम उद्घाटित होते हैं, नये रास्ते खुलते हैं और मनुष्य नयी उपलब्धियों के निकट पहुंचता है।'

—उपाध्याय अमरमुनि

भगवान महावीर को महिमा

□ चन्द्रप्रकाश बैंगानी
कोषाध्यक्ष,
स्मारिका समिति

भगवान महावीर व्यक्ति नहीं सत्य है। भगवान का समग्र जीवन सत्य की शोध, उपलब्धि और अनुदान का जीवन रहा है। साधना के इतिहास में भगवान जैसे दीर्घ तपस्वी विरले ही मिलते हैं। महावीर ने अनेकान्त के उस महान् सिद्धांत की व्याख्या की जिसमे विश्व की समस्त विचार धाराओं के समन्वय की क्षमता है। भगवान के अहिंसा और अनेकान्त को हम समझे और अपने जीवन में उतारे।

प्रभु के चरण में श्रद्धा के पुष्प सुमन समर्पित—

महावीर स्वामी तुम हो अन्तर्यामी
हम तेरी शरण आये नैया पार करो
हम तेरे चरण आये नैया पार करो

क्षत्रीय कुण्ड में जन्म लिया, त्रिशला माता के प्यारे।
देवी देवता मंगल गाये, सिद्धारथ के दुलारे।
मेरू पर्वत ले जावे, प्रभु जी को नवन करावे।
हम तेरी शरण आये......

तीस वर्ष की आयु में, प्रभु राज पाट को छोड़ा।
जंगलो में जा ध्यान लगा, कर्मो के जल को तोड़ा।
कार्तिक वदो अमावस आये, पावापुर मोक्ष सिधारे।
हम तेरी शरण आये......

चन्दन वाला ने जब ध्याया, उसको पार लगाया।
चण्डकोपी को उपदेशा, जब उसने द्वेष मिटाया।
'चन्द्र' को भव से तारो, मेरो बिगडी को संवारो।
हम तेरी शरण आये......

□

महाप्राण महावीर से प्रेरणा लें

☐ साध्वी श्री मनोहरश्री
फलोदी

हर वर्तमान अतीत के गर्त मे समाता चलता है। और उस पर समय की परत छाती चली जाती है। जो वतमान अपने समय मे लाखो मनुष्यो के मुह पर नाचता है, वही एक दिन अनुसन्धेय बन जाता है। विद्वान, विगतमूल वतमान को पकडने का प्रयत्न करते हैं, उस समय का वतमान फिर अतीत के अचल मे सिमट जाता है। यह क्रम चलता ही रहता है। इतिहास अपनी सफलता इसी मे आकता है। दशन, धम, सस्कृति, सभ्यता आदि सभी के अतीत को कुरेदा जाता है। वहा से जो कुछ भी यत् किंचित् प्राप्त होता है, उसे वर्तमान मे सजोया जाता है।

भ० महावीर का जीवनातीत भी विद्वान प्राय अब तक कुरेदते रहे हैं एव उनका आशिक स्वरूप ही जन समूह के समक्ष रख पा रहे हैं। यह एक अकाट्य सत्य है कि प्रभु महावीर के कृतित्व, व्यक्तित्व को शब्दो की सीमा मे नही बाधा जा सकता। अनत आकाश मे गरुड जैसे असख्य विहग जीवन भर उडान भरते रहे हैं पर आकाश की इयत्ता का अता-पता न किसी को लगा है, न लग सकेगा—क्या लौकिक-क्या लोकोत्तर, क्या भौतिक क्या आध्यात्मिक, क्या सामाजिक क्या राष्ट्रीय, क्या नैतिक और क्या धार्मिक ? सभी दृष्टियो से उनका जीवन दिव्य है, महतोमहियान है।

अनत असीम व्योम मडल से भी विराट् ! अगाध अपार महासागर से भी विशाल ! एक अदभुत, एक अद्वितीय ज्योतिधर व्यक्तित्व ! जिधर से भी देखिये, जहा भी देखिये और जब भी देखिये सहस-सहस, लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि असख्य अनत प्रकाश किरणें विकीर्ण होती दीखेंगी। महाकाल इतिहास की गणना मे 7,93, 440 दिन रात गुजरते चले गये परन्तु वह ज्योति न बुझी है, न बुझ सकेगी, न धूमिल हुई है न तिरोहित हो सकेगी।

महावीर जिस संस्कृति के व्यक्ति हैं, उसका विस्तार लगभग दस लाख वर्ष है। महावीर की साधना भी अनूठी है, धारणा भी विशिष्ट है। यही कारण है कि तीर्थकरो में चौवीसवे और अंतिम होते हुए भी वे लगभग प्रथम हो गये है। वे व्यक्तित्व न होकर अस्तित्व की सज्ञा पा गये। यह उनकी पच्चीस सौ सातवां निर्वाण दिवस है तथापि उनका जीवन्त स्वरुप ही हमारे समक्ष है। उनका सम्पूर्ण जीवन समन्वय का जीवन है। वह मानव जाति के लिये इहलोक, परलोक, और उससे भी परे लोकोत्तरता का आदर्श प्रस्तुत करता है। उनका जीवन दर्शन उभयमुखी है। जहा वह वाह्य जीवन को परिष्कृत विकसित करने की वात कहता है, वहा अंतर्जीवन को भी विशुद्ध एव प्रवुद्ध करने का परामर्श देता है। भौतिक वैभव एवं ऐश्वर्य के उत्कर्ष में खतरा है वह यह कि मनुष्य स्वय को भूल जाता है, अन्धेरे मे भटक जाता है। "भोगे रोगभयम्" भोग मे भय गुह्य है। तन का रोग ही नही मन का भी। तन रोग से मन का रोग अधिक भयावह है।

वढती हुई मन की विकृतियां मानव को कही का भी नही छोड़ती न घर का न घाट का। क्या आपने आज कल का फीका निस्तेज, निरुत्साहो, नि.सत्व पिचके गाल का चश्मेधारी वूढ़ा नवयुवक देखा है? पाठक वर्ग इस वात से संभवत: झिझक पडेगे। किन्तु रात्रि मे सिनेमा घरो के सामने, स्कूल कालेजो की कक्षाओ में, हास्पीटलो के अहाते मे, फैशनेविल दुकानो पर जहां कही भी अधिकतर नवयुवक एकत्रित होते है, उनमे आप ऐसे वुड्ढो को सैकड़ो की तादाद मे देख सकते है। उनका सुस्त, कान्तिहीन मुख, रोनी सूरत, पके वाल उनके खोखले पन के सूचक है। झुकी हुई कमरो से उनके स्वास्थ्य, शक्ति व भावी जीवन का अंदाजा लगाइये। अवश्य, हृदय सागर मे जोरो का ज्वार भाटा आ जायेगा। अधा पतन के मुख मे, समय से पहिले ही जाते हुए देश के कर्णधार इन नवयुवक वुड्ढो पर क्या तरस नही आता? वात कुछ नही, ये जीवन के प्रति विद्वेप की भावना लेकर चल रहे है, महापुरुपो के सिद्धान्तो से वेपरवाह है, मानसिक रोग से पीडित है। जिंदगी जिदादिली का नाम है मनुष्य तव तक वुड्ढा नही होता जव तक उसके जीवन मे मधुरता और उत्साह का अंतिम अंश बना रहता है।

आज यह पर्याप्त नही माना जाता कि वीमारी हुई और डाक्टर के पास चले जाओ आवश्यक यह है उससे पूर्व किसी मनोचिकित्सक के पास जाओ। और निदान कराओ कि इस अभिव्यक्त बीमारी के पीछे मन की कौनसी ग्रंथि उत्तरदायी है। हार्ट ट्रवल में शरीर की अपेक्षा मन का हाथ ज्यादा है। पक्षाघात और अल्सर जैसे रोगो मे भी यही वात है। इन सव मे मन वहुत वडा कारण है। मन को परखना अति आवश्यक है।

किसी विद्वान के शब्दो में—

'The world is what you make it., The sky is green or blue, just as your soul may paint, It's not the world, it's you'.

अर्थात् संसार वैसा ही वन जाता है जैसा आप चाहते है। आकाश आपको अपने मनः स्थिति के अनुसार ही हरा या नीलवर्ण का दृष्टिगत होता है। वास्तव में परिवर्तन संसार मे नही, तुम्हारे मानसिक दृष्टि कोण मे होते रहते है। दृष्टि वदली तो दिशा वदली और दिशा वदली तो मानो दशा वदल गई।

महावीर के भव्य जीवन से हम जीवन-निर्माण की दिशा मे जव भी और जो कुछ भी पाना चाहें, नि:सशय पा सकते है। आवश्यकता है केवल देखने वाली दिव्य दृष्टि की, उस दृष्टि को सष्टि के रूप मे अवतरित करने की।

भ० महावीर का गृह संसार से महाभिनिष्क्रमण अपनी अन्तरात्मा को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने के लिये तो था ही साथ ही सार्वजनिन हित का भाव भी उसके मूल मे था। महापुरुपो की साधना स्व पर कल्याण की दृष्टि से द्वयर्थक होती है। उनकी साढे वारह वर्षीय तप साधना जहां वाह्यरूप मे ऊंची और वहुत ऊंची थी, वहा आभ्यतर रूप मे गहरी और वहुत गहरी थी। वे शरीर से परे, इन्द्रियो से परे और मन से परे होते गये और अपने आपके निकट अपने शुद्ध निरजन, निर्विकार स्वरूप के समीप पहुचते

गये पहुचते गये और वह मगल क्षण आया कि अन्तर मे कैवल्य ज्योति का अनत अक्षय अव्याबाध महा-प्रकाश जगमगा उठा। स्वमगल के साथ विश्वमगल का द्वार खुल गया। धर्मदेशना के रूप मे तीर्थंकर महावीर की अमृत वाणी-'अहिंसा सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य अपरिग्रह एव जीओ और जीने दो' का दिव्य नाद गूजा कि जन जीवन मे फलता आ रहा अधकाराच्छिन्न माहौल छिन्न-भिन्न हो गया और सब ओर आध्यात्मिक भावो का दिव्य आलोक आलोकित हो गया।

आज की अराजकता युक्त शासन व्यवस्था, पारिवारिक वैमनस्य, सामाजिक विघटन राष्ट्रीय उलझन यह सब कुछ महाप्राण महावीर के दिव्य जीवन दर्शन, विश्वमैत्री सम्पन्न भव्य सिद्धान्तो पर गहन चिन्तन कर अपनी सही दिशा ले सकता है तथा प्रत्येक प्राणी महावीर युगीन स्वर्णिम सूर्योदय के दर्शन कर सकता है।

महावीर प्रभु, जीवन के हर कोण पर उसी प्रकार बेमिसाल है जिस प्रकार वैडूर्यरत्न। उनका जीवन आज की विषम परिस्थितियो मे भी अपने निर्मल चरित्र की आभा बिखेर रहा है। सत्य की खोज मे चल रहे हर यात्री के मन पर एक गहरी छाप डाल रहा है। उनका स्मरण होते ही तमसाच्छन्न जन मानस मे एक दिव्य एव सुखद प्रकाश फैल जाता है। उनका जीवन दर्शन मानव चरित्र निर्माण के लिए हर युग मे प्रेरणास्रोत रहा है और रहेगा, क्योकि आज ढाई हजार वर्ष का फासला हो गया—स्थिति बदल गई भाषा और विचार बदल गये, किन्तु महावीर का दर्शन नही बदल सका, क्योकि वह दर्शन कालातीत और क्षेत्रातीत है। उसे क्षेत्र और काल की सीमा से बाधा नही जा सकता। सभी उनके महिमामडित सिद्धातो से लाभान्वित हो, यही शुभेच्छा।

□

क्रोध एक विषधर

'क्रोध एक विषधर सर्प है जिसके डसने से आत्मा अपने स्वरूप को भूल जाता है। क्रोध से बुरा आत्मा का अन्य कौन शत्रु होगा? क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य को किसी प्रकार का विवेक नही रहता। क्रोध एक प्रकार का मनोविकार है। क्रोधी मनुष्य का कोई मित्र नहीं होता। क्रोधी मनुष्य अपने आपको सतुलित नहीं रख पाता। क्रोधी को अन्धा कहा गया है। क्योंकि जिस समय क्रोध आता है, उस समय मनुष्य को किसी प्रकार का विवेक नही रहता।'

जय जगवन्दन त्रिशलानन्दन

☐ उपाध्याय श्री अमरमुनि

अन्धकार है,
घोर तमिस्त्रा
कितनी गहराती जाती है ।
भटक रहे हैं कितने जनमन
कदम-कदम पर ठोकर खाते,
गिरते-पड़ते, अकुलाते, घबराते कितने !
"त्राहि-त्राहि" का शोर मचा है,
दिशामूढ है सभी भद्रजन,
क्या कुछ करे, समझ न पाते !
चिन्तन सारा शून्य हुआ है,
विकट हताशा, घोर निराशा,
ऐसा भी क्या दैव कोप है,
नहीं ज्योति की एक किरण भी दीख रही है ।

☐

वह क्षितिज पर
देखो उभरा
ज्योतिपुंज रवि
कितना भास्कर, प्रभा पुंज है !
जो भी है, सब भांति
अतुल है, अनुपम वाणी से पर है !
एक किरण भी उतरी जिसके
अन्तर में आलोक छा गया,
अन्धकार सब दूर हो गया,
जगमग जगमग ज्योति जगी, तो
पामर जन भगवान हो गया !

☐

महावीर-वाणी :
हिन्दी काव्यानुवाद

☐ श्री वशीर ग्रहमद 'मयूख'
2-ल-17, विज्ञान नगर, कोटा

जहा अंतो तहा वाहिं,
जहा वाहि तहा अंतो ।
ज सेय त समायरे

[आचारांग, श्रु । १ अ २ उ० ५]
[दश० अ० ४ गा० ११]

जैसे वाहर, वैसे भीतर,
जैसे भीतर, वैसे वाहर ।
अन्तरग औ वाह्य तुम्हारा
मन-विचार-उच्चार सभी हो सत्य उजागर !
करो आचरण वही कि जो हो अति श्रेयस्कर !

जा जा वच्चई रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्म च कुणमाणस्स, सफल जन्तिराइओ ।।१४।२५।।
जस्सत्थि मच्चुणा सक्ख,
जस्स वडत्थि पलायण ।
जो जाणे न मरिस्सामि,
सो हु कखे सुए सिया ।।१४।२६।।

[उत्तराध्ययन]

वीत गई जितनी भी रातें,
पुन. लौट कर कभी न आतीं,
पर जो करता धर्म-आचरण
उसको दिवस-निशा मुस्काती
मित्र-भाव है नही मरण के साथ किसी का,
कोई इससे बचकर भाग नही सकता है,
कोई कह सकता है-होगा वह न कभी हत् ?
अत: भरोसा करो न कल का, रहो कर्म रत !

बल थाम च पेहाए,
सद्धामारुग्गमप्पणो ।
खत्त काल च वि नाय
तहप्पाण निजु जए ।।८।३५।।

[दशवकालिक]

निज शरीर-बल और स्वास्थ्य को,
अपनी श्रद्धा, क्षेत्र, काल को
उचित ढग से जाचो परखो,
और नियोजित करो स्वयम् का पूर्ण मनोबल
तब जुट जाओ शुभ-कर्मों के सम्पादन मे
निश्चय तुमको मिले सफलता,
मिले सफलता !

कालेण काल विहरेज्ज रट्ठे,
बलाबल जाणिय अप्पणोय ।।२०।१४।।
सीहो व सद्देण न सतसेज्जा ।।२१।१४।।

[उत्तरा०]

शक्ति को पहचान अपनी हे सबल जन !
हो उचित क्षण पर यथोचित आचरण
डर न केवल शब्द [गीदड-भभकियो से]
घूम सारे राष्ट्र मे कर मुक्त विचरण
कर्म पथ पर सिंह सा निर्भीक बन !

सच्च लोगम्मि सारभूय,
गभीरतर महासमुद्दाओ ।
सच्च सोमतर चदमडलाओ,
दित्ततर सूरमडलाओ ।
सच्च च हिय च मिय च गाहण च ।

सच्च पि य सजमस्स उवरोहकारक
किं चि वि न वत्तव्व ।
अप्पणो थवणा, परसु निंदा ।
क्रुद्धो सच्च सील विणय हणेज्ज ।
लुद्धा लोलो, भणज्ज अलिय ।।२।२।।

[प्रश्न व्याकरण सूत्र]

सारभूत है सत्य जगत मे, सागर मे बढकर गभीर,
चन्द्र प्रभा से अधिक सौम्य है, सूर्याधिक तेजस्वी धीर ।
जो हित मित हो और ग्राह्य हो, ऐसा सत्य वचन बोलो,
जो सयम का घातक हो तो,
उस सच का मुख मत खोलो ।
पर-निंदक औ आत्म-प्रशसक, है असत्य की गाठ खोलता,
लाभ ग्रस्त भी झूठ बोलता, और मोह से सत्य तोलता ।
सत्य-शील औ विनय भाव
का नाश किया करता क्रोधी जन
[सद्गुण धारण करो सत्य के,
बचो दुर्गुणा से मानव मन]

पुरिसा ! तुममेव तुम मित्त,
किं बहिया मित्तमिच्छसि ?
पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ,
एव दुक्खा पमुच्चसि ।।१।३।३।।

[आचाराग]

तेरा मित्र स्वयम तेरे भीतर बैठा है
खोज रहा तू बाहर किस सहयोगी को ?
मानव अपने निजका निग्रह करे अगर
दुख से मुक्ति मिले निश्चय दुख भोगी को ।
□

तीर्थंकर महावीर का निर्वाण-स्थल : मध्यमा पावा

□ स्व० डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री
[वीर निर्वाण विचार-सेवा, इन्दौर के सौजन्य से]

तीर्थंकर महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा अथवा पावापुरी मे हुआ। इस पावापुरी की स्थिति कहां पर है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। वर्तमान मे कुछ व्यक्ति अनुसंधान के नाम पर नये-नये स्थानों पर पुराने क्षेत्रो की कल्पना करने का प्रयास कर रहे है। तथ्य कहा तक इतिहास-सम्मत है, यह शोध का विषय है। जैन साहित्य के प्राचीन और अर्वाचीन सभी ग्रन्थो मे महावीर का निर्वाण-स्थान पावापुरी वताया गया है। 'कल्पसूत्र' (सूत्र 123, पृष्ठ 198, श्री अमर जैन आगम शोध सस्थान शिवाना, राजस्थान) मे तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के विपय मे कहा गया है—'महावीर अन्तिम वर्षावास करने हेतु मध्यमा पावा के राजा हस्तिपाल के रज्जुकसभा-धर्मगृह में ठहरे हुये थे। चातुर्मास का चतुर्थ मास और वर्षाऋतु का सप्तम पक्ष चल रहा था; अर्थात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या की तिथि थी। रात्रि का अन्तिम प्रहर था। श्रमण, भगवान् महावीर काल-धर्म को प्राप्त हुए–ससार त्यागकर चले गये………।'

दिगम्बर ग्रन्थों मे भी तीर्थंकर महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा में बताया गया है। 'प्राकृत प्रतिक्रमण' (पृष्ठ 46) मे उल्लेख है—पावाए मज्झिमाये हत्थवालि सहाएनमसामि, अर्थात् मध्यमा पावा में हस्तिपाल की सभा मे स्थित महावीर को नमस्कार करता हूं। इसी तरह आशाधरजी ने भी 'क्रियाकलाप' मे लिखा है—'पावाया मध्यमाया हस्तिपालिका मण्डपे नमस्यामि'।

उक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि महावीर का निर्वाण मध्यमा पावा में राजा हस्तिपाल की रज्जुकशाला मे हुआ था। अभिलेखो से ज्ञात होता है कि यह रज्जुक शाला धर्मायतन के रूप में होती थी। यहां विशिष्ट धर्मोपदेशक का धर्मोपदेश या प्रवचन होने के लिए पर्याप्त स्थान रहता था। सहस्रों व्यक्ति इस स्थान पर वैठ सकते थे। रज्जुकशला में चौरस मैदान के साथ एक किनारे पर भवन स्थित रहता था।

हस्तिपाल कोई बडा राजा नही था। सामन्त या जमीदार-जैसा था। उस युग मे नगराधिपति का भी राजा के नाम मे उल्लेख किया जाता था, अतएव यह आशका नही की जा सकती कि मगध-नृपति श्रेणिक के रहते हुए निकट मे ही हस्तिपाल राजा का अस्तित्व क्यो कर सभव है। महावीर के समय में प्राय प्रत्येक नगर का अधिपति राजा कहा जाता था।

इस से अवगत होता है कि हस्तिपाल राजा मध्यमा पावा का स्वामी था और उसकी रज्जुकशाला मे महावीर का अन्तिम समवशरण लगा था तथा वही उनका निर्वाण हुआ था।

उक्त 'कल्पसूत्र' (सूत्र 124 और 127, सस्करण उपयु क्त) मे यह भी बताया गया है कि जिस रात्रि मे श्रमण भगवान महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, सम्पूर्ण दु खो से मुक्त हुए उस रात्रि मे नौ मल्लसघ के, नौ लिच्छवि सघ के अर्थात् काशी कौशल के 18 गणराजा अमावस्या के दिन आठ प्रहर का प्रोषधोपवास कर वहा उपस्थित थे। उन्होंने यह विचार किया कि भावोद्योत ज्ञानरूप प्रकाश चला गया है, अत अब हम द्रव्योद्योत-दीपावली प्रज्वलित करेंगे—

'कल्पसूत्र' के उपयु क्त उद्धरण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं—

(1) तीर्थंकर महावीर का निर्वाण राजा हस्तिपाल की नगरी पावापुरी मे हुआ,

(2) निर्वाण के समय नौ मल्लगण, नौ लिच्छ-विगण इस प्रकार काशी-कौशल के 18 गणराजा उपस्थित थे,

(3) अन्धकार के कारण दीपावली प्रज्वलित की गयी थी,

(4) उनका निर्वाण-स्थल मध्यमा पावा था।

अब विचारणीय है कि यह मध्यमा पावा कहा है ? प्राचीन भारत मे पावा नाम की तीन नगरिया थी। श्वे० जैन सूत्रा के अनुसार एक पावा वगदेश की राजधानी थी जो पारसनाथ पर्वत के आसपास भूमिभाग मे अवस्थित था। वर्तमान हजारीबाग और मानभूम के जिले इसी मे शामिल हैं। श्वे० जैन आगम ग्रन्थो में भगी जनपद की गणना 25।। आर्यदशा म की गयी है। बौद्ध साहित्य मे इसे मलय देश की राजधानी बताया है। मल्ल और मलय को एक मान लेने से ही पावा की गणना भ्रान्ति-वश मलय देश मे की गयी है।

दूसरी पावा कौशल मे उत्तर पूर्व मे कुशीनारा की ओर मल्लराजा की राजधानी थी। मल्लजाति के राज्य की दो राजधानिया थी—एक कुशीनारा, दूसरी पावा। सठिआव—फाजिलनगर वाली पावा सभवत यही है।

तीसरी पावा मगध मे थी, जो राजगृही के निकट इसी नाम से आज भी विश्रुत है। यह उक्त दोनो पावाओ के मध्य मे थी। पहली पावा इसके आग्नेय कोण मे और दूसरी इसके वायव्य कोण मे लगभग समान्तर पर थी। इसी कारण यह पावा मध्यमा पावा के नाम से प्रसिद्ध थी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इस पावा का सम्बन्ध राजा हस्तिपाल की सभा से है। इस पावा मे श्वे० जैन सूत्रो के अनुसार महावीर का दो बार आगमन हुआ था। उनकी दो महत्वपूर्ण घटनाए इस नगरी के साथ सबद्ध है।

प्रथम बार—केवलज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर अगले ही दिन—भगवान् महावीर यहा पधारे। उन दिनो मध्यमा पावा मे, जो जृम्भक ग्राम मे, जहा भगवान् महावीर को केवल ज्ञान हुआ था, लगभग 12 योजन दूर थी। आर्यसोमिल बडा भारी यज्ञ कर रहा था। इस यज्ञ मे देश-देशान्तर के अनेक विद्वान् सम्मिलित हुए थे। महावीर इस अवसर से लाभ उठाने की दृष्टि से मध्यमा पावा आये। मध्यमा पावा के महासेन उद्यान मे वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन उनका दूसरा समवशरण लगा। उनका उपदेश एक प्रहर तक हुआ। उपदेश की चर्चा समस्त नगर मे फैल गयी। आर्यसोमिल के यज्ञ में सम्मिलित हुए इन्द्रभूति आदि 11 विद्वान् ज्ञानमद से उन्मत्त हो अपने विद्वान् शिष्यो के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने पहुचे। उनका उद्देश्य महावीर मे विवाद करके उन्हे पराजित कर अपनी प्रतिष्ठा बढाना था, पर वहा पहुचते ही उनका ज्ञानमद

विगलित हो गया और उन्होंने भगवान् महावीर से श्रमण-दीक्षा ले ली। इसी दिन महावीर ने मध्यमा पावा के महासेन उद्यान में चतुर्विध-संघ की स्थापना की।

द्वितीय घटना महावीर के निर्वाण की है। महावीर चम्पा से विहार कर मध्यमा पावा, या आपापा पधारे। इस वर्ष का वर्षावास हस्तिपाल की रज्जुक-सभा में व्यतीत हुआ। चातुर्मास मे दर्शनों के लिए आये हुए राजा पुण्यपाल ने भगवान से दीक्षा ली। कार्तिकी अमावस्या के प्रातःकाल अपने जीवन की समाप्ति निकट समझकर अन्तिम उपदेशो की अखण्डधारा चालू रखी।

श्वेताम्बर वाङमय के आधार पर प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त विवेचन से मध्यमा पावा की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

मध्यमा पावा और जृम्भक ग्राम में इतना अन्तर होना चाहिये कि जिससे एक दिन में जृम्भक ग्राम से मध्यमा पावा पहुचा जा सके। यह अन्तर अधिक से अधिक 12 योजन दूरी का हो सकता है। उल्लेख है कि तीर्थकर महावीर का केवलज्ञान-स्थान जृम्भीक ग्राम, अर्थात् जम्भीय ग्राम है। यह ऋजुकूला नदी के तट पर स्थित जमूई गांव है, जो वतमान मुगेर से 50 मील दक्षिण में स्थित है। यहां से राजगृह की दूरी 30 मील, या 15 कोस है। पावापुर और राजगृह की दूरी भी अधिक से अधिक २५ मील है। इस प्रकार जमूई से पावापुर की दूरी 10 योजन से अधिक नही है। यदि सठिआववाली पावा को मध्यमा पावा माना जाए तो जम्भीय ग्राम से यह पावा कम से कम 100 150 मील की दूरी पर स्थित है। इतनी दूरी को वैशाख शुक्ला दशमी के अपरान्ह काल से वैशाख शुक्ला एकादशी के पूर्वान्हकाल तक तय करना सभव नही है।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि श्वेताम्बर सूत्र-ग्रन्थों मे बताया गया है कि तीर्थकर महावीर चम्पा-नगरी मे चातुर्मास पूर्ण कर जम्भीय गात्र मे पहुचे। वहां से मेढीय होते हुए छम्माणि गये। छम्माणि से वे मध्यमा पावा आये। महावीर के इस विहार-क्रम का भौगोलिक अध्ययन करने पर दो तथ्य प्रस्तुत होते है–

(1) छम्माणि ग्राम की स्थिति चम्पा और मध्यमा पावा के मध्यमार्ग पर होनी चाहिये। मेढीय ग्राम की दो स्थितियां मानी जाती है। एक स्थिति तो राजगृह और चम्पा के मध्य की और दूसरी श्रावस्ती और कौशाम्बी के मध्य की। यदि महावीर ने चम्पा से चलकर श्रावस्ती और कोशाम्बी के मध्य वाले मेढीय ग्राम धर्मसभा की हो तो कोई आश्चर्य नही है। कहा जाता है कि गोशालक की तेजोलेश्या के प्रयोग के पश्चात् महावीर श्रावस्ती और कौशाम्बी के मध्यवर्ती मेढीय ग्राम के शालिकोष्ठक चैत्य मे पधारे थे। महावीर के विहार-वर्णन मे आता है कि मध्यमा पावा से वे जम्भीय ग्राम गये और वहां उन्हे केवलज्ञान हुआ और वहा से राजगृह आये।

(2) विहार-वर्णन से पावा की स्थिति चम्पा और राजगृह के मध्य होनी चाहिये, अतः चम्पा से मध्यमा पावा होते हुए राजगृह गये और वहां से वैशाली। अतएव तीर्थकर महावीर की निर्वाण-स्थली पावा, चम्पा और राजगृह के मध्य होनी चाहिये।

गण राजाओ के वर्णन से पावापुरी की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है :

(1) महावीर के निर्वाण मे नौ मल्ल और नौ लिच्छवि ये १८ गणराजा पावापुरी मे सम्मिलित थे। यदि सठिआंव वाली पावा मे वे सम्मिलित होते तो दूरी इतनी अधिक हो जाती कि उनका वहां निर्वाणोत्सव मे सम्मिलित होना असंभव हो जाता।

(2) हस्तिपाल पावापुर का शासक था और यह राजासिह का पुत्र था। यदि इसे हम मल्लगण के अन्तर्गत मान ले तो भी अनुचित नही है। अत. चेटक की सहायता नौ मल्लो ने की थी और यह भी उसी मल्लगण के अन्तर्गत था।

(3) बौद्धों ने जिस पावा मे भोजन ग्रहण किया था और जो कुशीनगर के पास सठिआव के रूप मे मान्य

है उसका नृपति हस्तिमल्ल नहीं है। हस्तिमल्ल का किसी भी बौद्ध ग्रन्थ में उल्लेख नहीं आता। जैन ग्रन्थों में हस्तिमल्ल महावीर के प्रथम समवशरण में भी उपस्थित होता है, जिसका संयोजन पावापुरी (नालंदा के निकटवर्ती) में हुआ था। निर्वाण-लाभ करने के समय महावीर ने अपना अन्तिम चातुर्मास हस्तिमल्ल की मध्यमा पावा की रज्जुकशाला में किया था। अतः जैन साहित्य के प्रचुर प्रमाणों के आधार पर वर्तमान पावापुरी ही तीर्थंकर महावीर की निर्वाण भूमि है। □

सत्य विवेकपूर्ण हो

'एक अंधा मार्ग में भटक कर आगे बढ़ रहा है। उसके रास्ते में कुआं है। उसे दिखाई नहीं दे रहा है। यदि ऐसे समय में उसे कुएं की ओर जाते हुए देखकर देखने वाला कुछ न बोले, अन्धे को सावधान न करे तो यह पाप है, बहुत बड़ा पाप है। और तो क्या, यदि मौनव्रत भी ले रखा हो तो उस समय मौन रहने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए भगवान महावीर कहते हैं कि जो भी प्रत्याख्यान लें, जो भी क्रिया करें और जो कुछ बोलें या न बोलें अथवा मौन रहें, उसमें विवेक का होना आवश्यक है। साधना का मार्ग एकान्त निषेधरूप भी नहीं है और एकान्त विधिरूप भी नहीं है। एक समय के लिए किया गया किसी कार्य का निषेध परिस्थितिवश दूसरे समय उसी रूप में निषेध न रहकर कर्त्तव्य हो जाता है। स्त्री का स्पर्श करने का निषेध है साधु नवजात बच्ची का भी स्पर्श नहीं करता। परन्तु यदि कोई साध्वी भूताविष्ट है, क्षिप्त चित्त है, नदी या तालाब में डूब रही है तो उस समय उसे बचाने की दिशा में वह पूर्व निषेध अवरोधक नहीं है। उस समय के लिए स्पष्ट विधान है कि साधु साध्वी को पकड़ कर उसे पानी से बाहर निकाल सकता है। इसी प्रकार किसी विशेष प्रसंग पर आवश्यकता पड़ने पर जानते हुए भी यह कह दे कि मैं नहीं जानता, तो साधु का सत्य महाव्रत भंग नहीं होता। उस समय वही सत्य है।'

श्री मुलतान जैन श्वे० सभा, जयपुर

पदाधिकारी व सदस्यगण

महान् भागवती दीक्षा महोत्सव
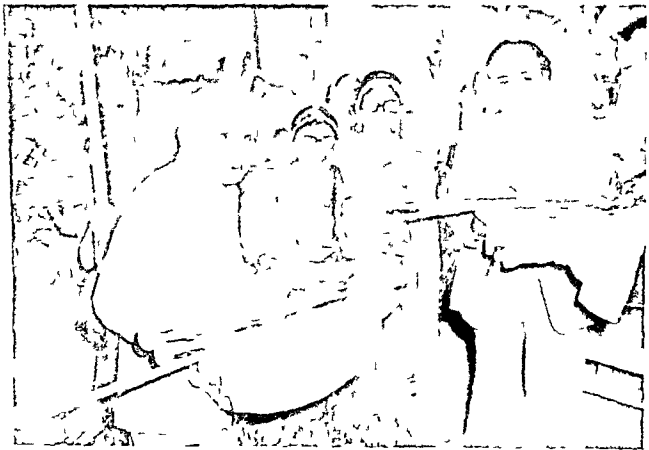
प्रवर्तिनी श्रीविचक्षण श्रीजी महाराज के सान्निध्य व श्री मुत्तनलाल जैन श्वे० सभा जयपुर के तत्वावधान में आयोजित महान भागवती दीक्षा समारोह में कुमारी हमलता सुराना व कुमारी सरला सिंघी को दीक्षा में पूर्व वस्त्र पहराते हुए क्रमश श्री मिलापचन्द सिंघी व श्री चन्द्रप्रकाश बगानी

हमारे विचार कैसे हों ?

☐ साध्वी श्री हेमप्रज्ञाश्री
इन्दौर

विचारों के चिन्तन से साधना की ओर मन दृढता से बढता है, मस्तिष्क के बन्द कपाट खुलते हैं। विभिन्न कोणों से जीवन के अलग 2 रूप दिखाई देते है। परम पूज्य साध्वी श्री मणिप्रभाश्री जी ने अपने एक चिन्तन मे विचार प्रगट करते हुए कहा था कि इस के दो रूप दिखाई दे रहे है—ठीक ऐसे जैसे

"नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन ।। कामायनी ।।

उन्होंने पानी की दो अवस्थाओं को देखा। नीचे जल था, ऊपर हिम था-एक तरल था, एक सघन। तरलावस्था मे कम्पन था, तरगे उठ रही थी और सघनावस्था में निष्कम्पता थी। दोनो एक ही पदार्थ की दो भिन्न अवस्थाये थी।

इसी प्रकार आत्मा की भी दो अवस्थाये है—एक अवस्था मे प्रतिपल प्रतिक्षण विचार तरगे उठ रही है, दूसरी अवस्था में आत्मा है लेकिन विचार नही। जहां विचार तरगे है, वह ससारी आत्मा की स्थिति है। जहां निर्विचारता है वह सिद्धावस्था की स्थिति है। हमारी स्थिति तरल पानी की तरह है—जहां प्रत्येक क्षण न जाने कितने विचार हमारे मनो-मस्तिष्क को आलोडित करते हैं, कितना मन्थन, कितना चिन्तन चलता रहता है। यह मन कभी मौन होता ही नही। सविकल्पक दशा मे विचार तो आयेंगे ही लेकिन विचार कैसे करें ? यह हम पर निर्भर है।

विचार कैसे हो ? इस पर आचार्य भगवन ने कहा है—

"सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपारत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।"

प्राणी मात्र मे मित्रता, गुणियो पर प्रमोद, दुखी जीवो पर कृपा एव विपरीत बुद्धि वालो पर तटस्थ भाव हो।

प्राणी मात्र मे मित्रता के भाव हो। मित्रता के भाव कब आयेंगे? जब आत्मीयता जागेगी। जब आत्मीयता का विस्तार होगा तो हमारे विचारो मे करुणा-सवेदना के परिणाम आने लगेंगे। चिन्तन चलेगा–जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही जगत के जीवो की है। जब सब के प्रति आत्मीयता का विस्तार हो जायेगा तो किसी को दुख देने का विचार ही नही आयेगा। क्या कभी कोई आत्मीयजनो को दुखी कर सकता है? आत्मीयजनो का सुख दुख व्यक्ति का अपना सुख दुख होता है। परिवार का एक व्यक्ति बीमार है तो पूरे परिवार को परेशानी हो जाती है क्योंकि आत्मीयता है। यदि आत्मीयता नही हो तो भले कोई कितना तडप ही क्यो न रहा हो—ऊपरी सहानुभूति दिखा कर चलते बनते हैं। अगर शत्रुता हो तो मन मे प्रसन्नता का सचार भी हो जाता है–अच्छा हुआ।

कहने का तात्पर्य है कि जिस व्यक्ति के अन्त करण मे सभी जीवो के प्रति मित्रता भाव आ जाता है, वह सबके सुख मे सुखी और दुख मे दुखी हो जायेगा। महापुरुषो की विशेषता होती है कि उनका हृदय अपने दुख मे वज्र और दूसरे के दुख मे मक्खन समान होता है। कवि ने कहा है—

> 'सत हृदय नवनीत समाना, कहा कवि हू पै कहै न जाना।
> निज परिताप द्रवइ नवनीता, परदुख द्रवहि सत सुपुनीता॥
>
> (रामचरित मानस)

सत हृदय को नवनीत की उपमा देते हुए कवि कह रहे हैं–यह उपमा भी उचित तो नही है–क्योकि मक्खन को अगर स्वय ताप लगे तो पिघलता है लेकिन सत हृदय तो दूसरे के दुख रूपी-ताप मे भी पिघल जाता है।

रामकृष्ण परमहस नौका यात्रा कर रहे थे। अचानक पीडा से कराह उठे—शिष्य घबराये, पूछा, गुरुदेव क्या हुआ? परमहस ने कहा–देखो! कोई कोडे मार रहा है। सबने देखा वास्तव मे उनकी पीठ पर कोडे के निशान थे। तट के करीब जब ही नौका पहुची तो सबने देखा—एक व्यक्ति अपने नौकर को चाबुक लगा रहा है। उसी की पीडा परमहस को हुई थी—यह जगत जीवो के प्रति मैत्री भाव के परिणाम थे।

हम चिन्तन करें–हमारी क्या स्थिति है? हमारी मैत्री वही तक है, जब तक की स्वार्थ है। स्वार्थ टूटा नहीं कि मित्रता छूटा नहीं। स्वार्थ को ठेस लगे तो मित्रता शत्रुता मे भी परिवर्तित हो जाती है, रिश्ते रिश्ते नही रहते। कभी अदालत मे बहस सुनें तो सारे रिश्तो की पोल खुल जाए। पुत्र पिता के सामने खडा है भाई-भाई के सामने खडा है, पति-पत्नी आमने-सामने खडे हैं। यह सब क्या है? हमारे हृदयो पर स्वार्थ के छाया अधकार। स्वार्थ की सीमा से निकलकर, इस छोट से 'मेरे' के घेरे को तोड कर जगतजीवो के प्रति "वसुधैव कुटुम्बकम्" भावना आए तो निश्चित ही अन्त-करण शुद्ध एव पवित्र होता चला जायेगा।

आचार्य भगवतो ने विचार रहे हैं—"गुणिषु प्रमोद"–गुणीजनो के प्रति प्रमोद भावना हो। जहा भी गुणाधिक कोई दिखे तो मेरा हृदय वही आल्हाद से भर उठे। प्रशसा करनी तो दूर हमारे लिए आज की स्थिति मे प्रशसा सुनना भी शायद सह्य नही। एक दिन कुछ व्यक्तियो के साथ चर्चा मे मैंने एक व्यक्ति की प्रशसा करते हुए कहा—वे बहुत तपस्वी हैं। तुरन्त ही दूसरा व्यक्ति बोला–महाराज साहब! मैं अच्छी तरह जानता हू—न तपस्या करते है तो क्या आप तो बहुत ही करते हैं।

यह क्या? प्रशसा सही नहा गई। हमारी दृष्टि गुण ग्राहक नही दोष दर्शक है। हम जहा देखते हैं दोष ही दोष। दूसरो की प्रकृति की चौकीदारी ही करते रहते हैं–इसमे ये दोष हैं, ये दोष हैं। छिद्रान्वेषी इस ताक मे ही रहते हैं कि कही किसी की कमी दिखाई दे और हम बोलें। एक बार चलनी ने सुई से कहा–अरी सुई! तू कितनी छोटी और फिर भी तेरे मे छिद्र। सुई मुस्कुराई और बोली–अरी चलनी! मेरा इतना छोटा सा छिद्र तुझे दिख गया और तू स्वय जो छिद्रो से भरी हुई है यह तो तुझे मालूम ही नही।

स्वयं के अनगिनत दोषों का भान नही और दूसरों के दोष देखते रहते है—यही हेतु गृहकलह का कारण वनता है. समाज की दृष्टि मे भी हमे नीचे गिराता है। यदि हमारी दृष्टि गुणदर्शक है तो हमारे मे भी क्रमशः वे गुण आते चले जायेंगे।

'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्'—

दु.खी जीवों पर करुणा के भाव हों। कही किसी की दीन दशा पर हम उपहास न करें। अपने से नीचे व्यक्तियों की हम सहायता कर सके तो अवश्य करे अन्यथा उपहास तो न करे। हमारे हृदय मे ऐसे अशुभ कर्मो से ग्रसित जीवों के प्रति सदैव अनुकम्पा भाव रहे।

'माध्यस्थ भाव विपरीतवृत्तौ'—

विपरीत वृत्ति वालों पर तटस्थ भाव, उदासीन भाव रहे। प्रत्येक जीव के अपने पूर्व के संस्कार भी होते है एव वर्तमान वातावरण का प्रभाव भी। अगर कोई समझता नही तो हम तटस्थ भाव धारण कर ले।

हे भगवान ! इस प्रकार मेरा हृदय इन चार प्रकार के विचार सागर में ही डुबकी लगाए। गुणाधिक पर प्रमोद भाव, प्राणी मात्र के प्रति मित्रता, दुखी जीवों पर करुणा एव विपरीत वृत्ति वालो पर माध्यस्थ भाव आयेंगे तो निश्चित ही हमारी आत्मा अशुभ भावनाओ से हटकर शुभ प्रवृत्ति करती हुई शुद्ध की ओर त्वरित गति से वढती चली जायेगी। इहलोक और परलोक मे ही लाभ नही होगा अपितु वह लाभ व्याज धन के रूप मे वढता चला जायेगा। वे संस्कार पुष्ट होते होते हमे हमारे लक्ष्य की ओर गतिशील रखेंगे और एक दिन हमे अवश्य लक्ष्य प्राप्ति होगी। □

परोपकार

'जव पृथ्वी के समस्त जलाशयो, सागरो एव सरिताओ ने अपना जल-वाहक वादल को ही वनाया, तव यह सोचकर कि वह इस महान् कार्य को कैसे करेगा, अत्यधिक चिंतित हो गया। अन्तर्मन की उथल-पुथल से उसका मुख श्याम हो गया। घवराकर वह ईश्वर के समीप जाकर प्रार्थना करने लगा—हे प्रभो ! इस मायाजाल से तुम्ही छुडाओ ! ईश्वर ने उसे सात्वना दी और कहा—यह तुम्हारे लिये अत्यन्त हर्ष की वात है। वत्स ! तुम्हे सभी ने इस महान कार्य के लिए उपयुक्त पात्र जान कर चुना है। तुम अपने कर्तव्य को अवश्य पूर्ण करो। इसमे जगत् मे तुम्हारी यश-कीर्ति फैलेगी। सिर झुकाकर वादल ने अमृतमयी वाणी को सुना और कर्तव्य मार्ग पर वढ चला। जव उसने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया, तव उसका मुखमण्डल कातियुक्त हो गया। वह उज्जवल-समुज्जवल हो, जग मे अपनी कीर्ति विखेरता रहा। सत्य यही है कि हमें परोपकार के कार्य को भार नही, कर्तव्य समझकर करना एव निभाना चाहिये।'

—डॉ० श्रीमती छाया शर्मा

मानव सेवा से ही सत्य का दर्शन

☐ श्री मोरारजी देसाई
बम्बई

मानव के लिए चार लक्ष्य बताये गये हैं। यों तो लक्ष्य एक ही है—सत्य की साधना और ईश्वर की प्राप्ति। चार लक्ष्य हैं—धर्म, अर्थ काम और मोक्ष। जब तक मनुष्य धर्म को नहीं समझता और उसके अनुसार नहीं चलता, तब तक सारे कार्य और सांस्कृतिक क्रियाएँ विपरीतता की ओर चली जाती हैं। आज हम बहुत बड़े सांस्कृतिक संकट से गुजर रहे हैं, क्योंकि धर्म के वास्तविक अर्थ को, उसकी महत्ता को हमने छोड़ दिया है। धर्मपूर्वक जो कुछ किया जाय उससे शुद्धि होती है, कर्म में पवित्रता आती है।

धर्म क्या है ? अनेक पंथ हैं जो धर्म की शिक्षा देते हैं। सबका अन्तिम लक्ष्य एक ही है, ऐसा मैं समझता हूं। धर्म अर्थात मानव-धर्म। मनुष्य दूसरों को सुखी करने में ही अपना सुख माने, किसी को दुःख न पहुंचाये, यही सच्चा धर्म है। अहिंसा यही सिखाती है। इस बात को भगवान महावीर ने बड़ी खूबी से जनता को समझाया। हम किसी को दुःख न दें, किसी को नुकसान न पहुँचायें बुरी या निंद्यभाषा का प्रयोग किसी के लिए न करें, मन में सद्भावना रखें किसी को अपना दुश्मन न मानें। जो हमें दुश्मन मानते हैं उनका भी हम भला चाहें और दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए स्वयं दुःख उठायें इसी को धर्म कहते हैं। यही मानवता का सिद्धान्त है। यह सत्य एवं अहिंसा के बगैर साध्य नहीं है। सत्य के बिना अहिंसा साध्य नहीं है और अहिंसा के बिना सत्य साध्य नहीं है। दोनों एक-दूसरे में निष्पन्न होते हैं। लेकिन धर्म के नाम पर ही दुनिया में अनेक बार झगड़े हुए हैं। जैनों के भी तीन-चार सम्प्रदाय हो गये। भगवान् महावीर ने अहिंसा धर्म को समझाया और समन्वय के लिए स्याद्वाद का सिद्धान्त दिया। स्याद्वाद का अर्थ है कि हम दूसरों के भी विचारों का स्वागत करें।

मनुष्य जब धर्म को पहचानेगा, स्वीकार करेगा तब

जो अर्थ उपार्जन करेगा, वह न्यायोचित होगा। मुनि तथा साधु-गण, धर्म की शिक्षा देते है। लेकिन उनका भी अर्थ के बिना नही चलता। सामान्य मनुष्य का तो अर्थ के बिना चल ही नही सकता। उसकी जिम्मेदारियां होती है। अर्थ का प्रयोजन है इच्छाएं पूरी करना। धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन किया जाय तो इच्छाएँ गलत नही हो सकती, इच्छाएँ हमे नीचे नही गिरा सकेगी। इच्छाएँ पूरी करना ही काम है। गलत इच्छाएँ न हो, तो काम गलत दिशा में नहीं जायेगा। इसीलिए गीता मे कहा है—'धर्माविरुद्धो कामास्मिभरतर्षभ':—हे अर्जुन! मैं धर्म का अविरोधी काम हूँ। यहां काम भगवान् का प्रतीक है। वह तभी है जव वह धर्म के अविरुद्ध है। इस प्रकार धर्म के साथ अर्थ और काम का समन्वय होता है। और हमारा जीवन सात्विक, सेवामय बनता है, तो मोक्ष सहज हो जाता है। □

चारित्र-बल

'मनुष्य का स्वभाव न तो अपने-आप अच्छा होता है, और न बुरा। जैसा वातावरण होता है, वैसा ही उसका स्वभाव बनता है और बिगडता रहता है। मनुष्य के स्वभाव-निर्माण मे और चारित्र-निर्माण मे उसका सकल्प एवं उसकी इच्छा-शक्ति का बहुत बड़ा हाथ रहता है। मनुष्य के जीवन की विशेषता उसके अच्छे चारित्र-विकास मे है। 'चारित्र' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक एव विशाल है। इसमे समस्त मानवीय सद्गुणो का समावेश हो जाता है। त्याग, तपस्या, वैराग्य, सहिष्णुता, कर्त्तव्य और प्रेम आदि अनेक गुणो का परिबोध 'चारित्र' शब्द से सहज हो जाता है।

यदि मनुष्य मे चारित्र नही है, तो सब कुछ होते हुए भी वह खोखला है। ज्ञान जब क्रिया मे उतरता है तब वह चारित्र बनता है। आचार-हीन विचार कभी-कभी बहुत भयंकर सिद्ध होता है।'

शिक्षित कौन ?

बर्षों पूर्व की बात है। गर्मी के दिन थे। सूरज आग बरसा रहा था। जेठ का महीना और हवा में सन्नाटा! न कहीं पानी, न कहीं पेड़-पौधों पर पत्ते। नीचे पैर जलें और ऊपर सिर! फिर भी साधु को तो विहार करना ही था। वे चले जा रहे थे। अपने शिष्य के संग!

चलते चलते दूर कहीं एक पाठशाला दिखाई दी। आश्वस्त से हुए कि चलो, वहाँ ठहर जायेंगे। दोपहर ढलने पर पुनः विहार किया जायेगा! पाठशाला पहुँचे। छुट्टियों के दिन थे। एक कमरे में एक शिक्षक लेटे-लेटे कोई जासूसी उपन्यास पढ़ रहा था।

जब अध्यापक साधुओं को देखकर अपनी जगह लेटा ही रहा, उठा तक नहीं, तो साधुओं ने ही कहा कि 'भाई, हम यहाँ ठहरना चाहते हैं!' शिक्षक महाशय उनका टिकना पसंद नहीं करते थे। इसलिए नियम की आड़ लेकर कहा— नहीं आप यहाँ नहीं ठहर सकते! जानते हैं यह स्कूल है स्कूल।'

साधु आखिर साधु ही थे। किसी स्थान पर उनका अधिकार तो होता नहीं। शिक्षक जब टस से मस नहीं हुआ तो साधु अपने पात्र उठाकर आगे बढ़ गये। थोड़ी दूरी पर एक ठूंठ-सा पेड़ दिखाई दिया, साधु वहीं बैठ गये। धरती तो सबकी माता है [illegible]!

इतने में उनके पास एक चरवाहा-बालक पहुँचा। दो साधुओं को जलती दोपहरी में खुले आसमान के नीचे बैठा देखकर उससे न रहा गया। वह निकट आया। बोला—'बाबा, राम राम'!' साधुओं ने भी उत्तर में 'राम-राम' कहा। अब बालक इनके और निकट आया और बोला— आप इस दोपहरी में यहाँ क्यों बैठे हैं! आपने तो अभी तक रोटी भी नहीं खायी होगी! चलिये मेरे साथ मेरे घर ठहरिये, मेरी माँ आपको खाना भी देगी, पानी भी पिलायेगी।

☐ कुमारी वन्दना जैन
ज 228 आनन्द कुटीर,
आदर्श नगर, जयपुर

(संकलित)

साधु उस बालक की इस ग्रात्मीयता से पुलकित हो उठे। कहा—'नही हम यही ठीक है। अभी थोड़ी देर मे धूप ढल जायेगी। चले जायेगे!

बालक ने नंगे पॉव देख कर कहा—'बावा, आपके पास तो जूते भी नही है। लो ये मेरे बाप के जूते है। इन्हे पहन लो, पैर नही जलेगे।'

घटना का प्रश्नचिन्ह यह कि आखिर शिक्षित कौन है? वह शिक्षक अथवा वह चरवाहा-बालक? छात्रों को संस्कारों की शिक्षा देने वाला जो शिक्षक विद्यालय मे निषिद्ध पुस्तक पढ़ता है, वही एक साधु को टिकाने से इन्कार कर देता है! दूसरी ओर वह गड़रिया-पुत्र है, जिसने अभी अक्षर-बोध का श्रीगणेश भी नही किया है, वह बाबा से बडे आत्म-विश्वासपूर्वक घर चलने का आग्रह करता है।

वर्तमान सभ्यता का एक ज्वलन्त प्रश्न है कि शिक्षा की दिशा क्या हो, गति क्या हो, फलश्रुति क्या हो?

आज के ये अधकचरे शिक्षित और शिक्षक देश की नव-कलियों को, कोमल कुसुमों को कही जड़ पाषाण तो नही बना देगे? □

पतझर और वसन्त

'मनुष्य के जीवन मे कभी दुःख तो कभी सुख। जीवन की धारा कभी एक रस नहीं रहती, कभी सम तो कभी विषम। अनुकूलता और प्रतिकूलता के झूले पर झूलते रहना ही वस्तुतः मानव का स्वभाव है। उसके जीवन क्षितिज पर कभी अधियारी रात आती है, तो कभी उजला दिन भी आता है। उसका जीवन एक ऐसा जीवन है, जो कभी निराशा के गहरे गर्त मे पहुंचता है, तो कभी आशा के उच्चतम शिखर पर। जीवन की वाटिका मे कभी अपत पतझर आता है, तो कभी सुन्दर वसन्त भी वहा पर मुस्करा उठता है। पतझर के बाद वसन्त और वसन्त के बाद फिर पतझर—यही तो जीवन-क्रम है।

महाकवि दिनकर ने जीवन की इसी परिभाषा को अपने काव्य मे मधुर-भाव मे अभिव्यक्त किया है—

'फूलों पर आँसू के मोती और अश्रु में आशा।
मिट्टी के जीवन की छोटी, नपी-तुली परिभाषा ।।'

महावीर-वन्दन

□ डॉ० सरयूप्रसाद

मैं कहा आज इस योग्य देव !
कि चढा सकू रोली चन्दन ।
हो मुक्त हृदय कर सकू तुम्हारी,
अमर विभा का अभिनन्दन ।।

तुम अमल-धवल महिमा मण्डित,
मैं राग-द्वेष से हू जर्जर ।
तुम हो करुणा की दिव्य-मूर्ति,
मैं जड कठोरतम हू प्रस्तर ।।

तुम नगपति पहने हिमकिरीट,
मैं धरती की हू क्षुद्र धल ।
लहरें विह्वल अन्तर-तम मे,
पाऊ कैसे वह ज्योति-कूल ।।

पाऊ कैसे मैं आज देव !
जग-हित वह करुणा की पीडा ।
लू उठा हलाहल का प्याला,
किस भाति किए शिव-सी क्रीडा ।।

हे विभा राशि ! दो विभा दान,
मै धूल-कणो मे चमक उठू ।
वन दीप तुम्हारे मन्दिर का,
चिर ज्योति-परस से दमक उठू ।।

तजकर वे हीरकहार, सजोकर,
दुखियो के मुक्ता अपार ।
आतप वसुधा को सीच चले,
हिम-सा गल-गल तुम वार-वार ।।

है दलित मनुज के मुक्ति पुत्र !
हे वन दधीचि, हे धर्म प्राण !
हे स्वर्ग रश्मि, उतरो भू-पर
फिर विकल विश्व का करो त्राण !

क्या आप अधिक सुन्दर बनना चाहती हैं ?

□ श्रीमती निर्मला जैन
सचिव, श्री महावीर महिला मण्डल,
आदर्श नगर, जयपुर

आज के आधुनिक जीवन में रूप-रंग व सौन्दर्य को निखारने की बहुत ही व्यावहारिक आवश्यकता है। कोई भी महिला स्वयं को सब से अधिक सुन्दर दिखने का मन में स्वप्न संजोये रहती है–उस की लालसा रहती है कि वह इतनी सुन्दर दिखे कि उस के सौन्दर्य की चर्चा दूसरे भी करें, इसी सौन्दर्य-अभिवृद्धि मे सहायता करने के लिये आज जगह जगह ब्यूटी पार्लरस की सेवाये भी बड़े पैमाने पर सुलभ है।

अच्छे रूप-रंग की कामना संसार के हर इन्सान के मन मे कुलबुलाया करती है–इसी कामना के कारण सौन्दर्य प्रसाधन बनाने वाली कम्पनियो का करोड़ों रुपये का व्यापार चलता है, हजारो लोगो की रोटी चलती है। इसी अभिलाषा-कामना के बल पर थोड़े दिन बाद वेष-भूषा और शृंगार के फैशन एकाएक बदलते रहते है।

क्या आपको अपने रूप-रंग से पूरा सन्तोष है ? आपकी कभी इच्छा नही होती कि किसी की नीली आँखो जैसी आपकी भी आँखे हों या सुडौल चमकीले दाँत हो, घने घु घराले बाल हो ?

यदि आप अपने रंग-रूप से थोडा संतुष्ट है. और उसे ज्यादा निखारने के लिए उत्सुक हैं; तो इस बात की अधिक सम्भावना है कि आप प्रयत्न गलत दिशा मे कर रही हो यानी मुखड़े के बाहर की ओर से। शायद क्रीम, पाउडर, रूज, केशसज्जा पर आपका बहुत-सा पैसा भी खर्च हो रहा हो, फिर भी आपको सन्तोष नही मिल पा रहा हो। असल मे शायद आपके रूप-रग को संवारने के लिए इन बाह्य साधनों के बजाय आंतरिक सहारे की आवश्यकता है। मेरा मतलब आत्म विश्वास से नही है। मेरा मतलब है अच्छे हृदय से, शायद आपका हृदय आपके चेहरे को

सहारा नहीं दे रहा है। तमाम क्रीम-पाउडर, वेष-भूषा एवं केश-सज्जा के पीछे भाग कर वह आपका हुलिया बिगाड देता है। चतुरतम सौंदर्य सज्जाकार और दक्षतम दर्जी भी हृदय का ऐसा ऐसा करने से रोक नहीं सकते। आपके चेहरे के पीछे जो चीज है, वह अगर असुन्दर है तो दुनिया को वह दिख ही जायेगी—भले ही आप उसे छिपाने की लाख कोशिश करें।

इसलिए आपको अगर सुन्दर बनना है तो अपने चेहरे के पीछे से अर्थात् अन्तमन की गहराई से प्रयत्न आरम्भ कीजिये प्रतिदिन अपने हृदय की शृंगार-सज्जा कीजिये।

सौन्दर्य को निखारने का एक बेजोड नुस्खा यहां दिया जा रहा है। अगर आप लगन के साथ उसका उपयोग करें, तो आपके चेहरे म चमत्कारी परिवर्तन आ जायेगा। पर हां, नुस्खे में बताया गया लेप आपको स्वयं तैयार करना पडेगा। वह किसी फैक्टरी में बना-बनाया नही मिलता, न किसी और से बनवाया जाता है, इसमें पडने वाली सामग्री यद्यपि बाजार मे नही मिलती, फिर भी वे बहुत सुलभ हैं। लेप स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान उपयोगी है।

लीजिये नुस्खा हाजिर है—

❀ भरपूर मात्रा मे 'प्यार' लीजिये, जितना अधिक ले सकें उतना ही अच्छा है। यह मृदुताकारी है, इसके बिना नुस्खा बेकार है।

❀ मुट्ठी भर सहृदयता मिलाइये, यह चिकनाई देता है। इससे घर्षण भी मिटेगा।

❀ ढेर सारी प्रसन्नता उडेलिये। यह मनहूसियत दूर करके आनन्द फैलायेगी।

❀ करुण-रस को मत भूलिये। मगर हां उसके उपयोग में विवेक जरूरी है।

❀ अब विनोद की बडी-सी डली इसमें घोट दीजिये विनोद जीवन मे वही काम करता है, जो भोजन मे नमक और मसाला।

❀ खूब सारा सब्र मिलाइये। इससे सफलता का मार्ग प्रशस्त होगा।

❀ दूसरों के प्रति विश्वास की भावना काफी मात्रा मे मिलाइये। इससे महत्वाकांक्षा को बल मिलेगा प्रयत्न परिपुष्ट होगा।

❀ पर्याप्त मात्रा में आशा घोलिये, वह मायूसी को भगायेगी।

❀ इसके बाद खूब सारा साहस मिलाइये, जो आपको पीछा पडने से बचायेगा।

❀ जितनी भी मुस्कान बटोर सकें बटोरकर इस पर छिडक दीजिये। जैसे आचार, मुरब्बे से बेस्वाद भोजन का फीकापन मिट जाता है, उसी तरह मुस्कान भी बहुत-सी न्यूनताओं को छिपा देती है।

ये सभी चीजें जब आपस में अच्छी तरह मिलकर बढिया गुलाबी क्रीम का रूप धारण कर लें तब प्रति-दिन अपने हृदय पर इसका लेप किया करें। मोटा लेप लग जाये तो कोई हर्ज नहीं। लगा रहने दीजिये। वह भी जज्ब हो जायगा।

इसके बाद अच्छी तरह मालिश कीजिये और कम से कम एक घंटा कसरत कीजिये। किसी को स्नेह दीजिये। किसी का कोई हित कीजिये। ज्यादा नही तो जब आपने पूरा वाहन किराये पर लिया है, उसमें सीट खाली है, तब उस राह पैदल जाते किसी को बैठा लीजिए। यह भी सम्भव न हो, तो दो मीठे शब्द ही बोलिए। हंसिये, हंसाइये। नित्य की जीवन-चर्या मे विनोद के काफी अवसर आते हैं उन्हें हाथ से जाने न दीजिये। दूसरों के दोषों को सब्र से सह लीजिये, आखिर हम सब जानते हैं कि स्वयं हम कितने दोषों से भरे हैं। दूसरों में आस्था रखिये, सदा शुभ-मंगल की आशा रखिये। जीवन का साहसपूर्वक सामना कीजिये। मुस्कराइये, दूसरों का बुरा न चाहिये- न सोचिये।

इन निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन कीजिये, थोडे समय मे ही आपको भीतर से अनुभव होगा कि आपका रूप-रंग निखर रहा है। आपका चेहरा अधिक सुन्दर दिखाई दे रहा है। धीरे 2 यह आ रहा परिवर्तन आपके अन्तर्मन की सात्विकता को और अधिक निखारेगा। आप केवल दिखाने के लिये बाह्य रूप मे ही सुन्दर नही दिखेंगे, अपितु वास्तव मे सुन्दरतम दिखाई देने लगेंगे। आप का मन आत्म-सतोष के अनमोल सुख मे सराबोर हो उठेगा और चेहरा कान्तिमय हो जायेगा। □

अद्भुत औषध

☐ राजेश जैन
18-सी, वोहरा भवन,
वरड़िया कालोनी, जयपुर–302004

एक राजा के बहुत मनौतियाँ मनाने के बाद ढलती उम्र में एक पुत्र हुआ। राजा का मन था कि पुत्र सदा हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ एवं तेजस्वी बना रहे। उसने दूर-दूर तक के वैद्यों को बुलाकर कहा कि इसके लिए ऐसी दवा की व्यवस्था करे, जिससे यह सदा नीरोग एवं तेजस्वी बना रहे। उनमे से तीन वैद्य सामने आये और उन्होंने अपनी-अपनी औषध के गुण-दोष बताए।

प्रथम वैद्य ने कहा कि मेरी औषध खाते ही सब रोगो को नष्ट कर देती है, भले ही असाध्य रोग भी क्यों न हो ? परन्तु यदि कोई रोग नही है और उसे खा लिया जाय, तो उससे नया रोग उत्पन्न हो जायेगा। राजा ने कहा–आप अपने घर जाइये। ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो आपकी दवा लेकर नयी आफत मोल ले।

दूसरे वैद्य ने कहा—मेरी दवा लेने से रोग होगा तो वह उसे नष्ट कर देगी और यदि रोग नही है तब भी वह किसी तरह का नुकसान नही करेगी। इससे लाभ नही, तो नुकसान भी नही होगा।

राजा ने कहा—यह तो राख में घी डालने जैसा है। बच्चा बीमार तो है नही कि उसे दवा देकर स्वस्थ किया जाय। दवा तो इसलिए देनी है कि उससे भविष्य मे उसे स्वास्थ्यता का लाभ हो।

तीसरे वैद्य ने कहा–मेरी दवा की विशेषता यह है कि यदि किसी भी तरह का रोग हो, तो वह उसे समाप्त करके रोगी को निरोग कर देगी। यदि औषधि लेने वाला पहले से स्वस्थ है, तो उसके शरीर मे कभी भी भविष्य मे रोग नही होगा और उसकी शक्ति मे निरन्तर अभिवृद्धि होगी, उसका तेज बढता जायेगा। और यदि कोई गुप्त बीमारी हो, जिसका पता न हो वह भी दूर हो जायेगी। राजा ने कहा—यही औषध मेरे पुत्र के लिए उपयोगी है।

हमारे महान् आचार्य भगवन्त ज्ञानी गुरु कहते हैं— धर्म तीसरी दवा है। वह क्रोध के, अहंकार के, माया के, लोभ के पहले से चले आ रहे जो विकार हैं, उन्हें तो दूर करेगी और पुन उन्हें पैदा नहीं होने देगी। कषायें उदय मे आ रही हैं, उन्हें उपशान्त एव क्षय कर देगी और पुन उदयमान मे आने नही देगी। इतना ही नहीं, उससे आपके जीवन मे सत्य की शक्ति बढेगी, प्रेम, स्नेह एव माधुर्य का तेज बढेगा। एक एक सद्गुण जो आपके अन्दर मूर्छित पडे हैं, दबे पडे हैं, वे जागृत होंगे, उनका विकास होगा। यह अद्भुत औषध है। महान आचार्यों ने जो कहा है, वह बिल्कुल सत्य कहा है। उनको वाणी को हजारों वर्ष होने जा रहे हैं, परन्तु आज भी उसे कोई चुनौती नही दे सकता। और लाखों-करोडों वर्ष बीत जायेंगे तब भी इस सत्य एव तथ्य को कौन चुनौती दे सकता है?

वस्तुत धर्म न तो प्रथम औषध जैसा है कि विकार हो तो दूर हो जाय, अन्यथा नये उत्पन्न कर दे। न वह दूसरी औषध की तरह है कि न लाभ करे और न नुकसान। वह तीसरी औषध जैसा है, जब भी स्वीकार करिये आपको लाभ ही लाभ होगा। यथा-समय यथा शक्ति तप करिये, स्वाध्याय करिये, ध्यान करिये—दान करिए—धर्म के किसी भी अग की आराधना करिए, वह जीवन को उन्नत ही बनायेगा। उसकी एक ही धारा नही है, वह तो सहस्र-सहस्र धाराओं से बरसने वाला महामेघ है। आप किसी भी धारा का आनन्द ले सकते हैं। उसकी हर धारा जीवन का निर्माण करने वाली है। आवश्यकता इस बात की है कि उसमे तन्मय हो जाइये। बाहर के झगडों से एव दिखावे मे ऊपर उठकर अपने अन्दर उतरें और गहरे उतरते जायें आपको अपूर्व आनन्द की अनुभूति होगी। जो आनन्द तन्मयता मे है, समरसता मे है, वह अन्यत्र कहीं भी नही है।

साधक के अन्तर्जीवन मे त्याग-विराग की निरन्तर वर्षा बरसती रहे। स्वाध्याय की, ज्ञान की, ध्यान की, चिन्तन की, तप की सहस्र-सहस्र धाराएँ बरसती रहे, जिसके प्रवाह मे मोह का, मेरे-तेरे-पन का, साम्प्रदायिक अह का कालुष्य धुल जाए। राग-द्वेष एव द्वन्द्व दूर हो जाएँ। यह औषध तो धर्म मेघ है, वह जब बरसता है और जहा बरसता है, वहा समरसता ही रहती है। इस वर्षा मे न तो अह के साप निकलते हैं, न विद्वेष के बिच्छू ही डक मारते फिरते है और न साम्प्रदायिक विग्रह के कीडे मकोडे ही उत्पन्न होते हैं तथा न विकारों का कीचड ही होता है। यह वह अद्भुत औषध है, जिसे ग्रहण करने के बाद न तो रोग रहता है और न कभी भविष्य मे रोग होता है।

□

जीवन पथ

पानी वह है काटों को जो,
फूलो मे बदला करता है।
घोर अमा के काले तम को
पूनम-सा उजला करता है॥

भगवान् महावीर का ध्यान नित्य नियमित रूप से करें !

☐ अगरचन्द नाहटा
नाहटों की गुवाड़, बीकानेर

जैन धम में सर्वोच्च पूज्य स्थान तीर्थंकरों का है। भगवान ऋषभ देव से भगवान महावीर 24 तीर्थंकर इस दक्षिण भरत क्षेत्र के अव सर्पिणीकाल में हुए है। उन सबका नित्य स्मरण करना, उनकी भक्ति पूजा व गुणानुवाद करना प्रत्येक जैनी का परमाश्यक कर्तव्य है। वे तीर्थंकर केवलज्ञानी वीतरागी अर्हन्त हैं 'अर्ह' शब्द का अर्थ है पूजा के योग्य या पूजनीय। जैन धर्म मे राग व द्वेष पर विजय प्राप्त करने वाले महापुरुष को 'जिन' कहते है व उन्ही के अनुयायी होने से हम 'जैन' कहलाते है। इसलिए राग व द्वेष पर विजय प्राप्त करना, वीतरागी व समभावी होना प्रत्येक जैनी का लक्ष्य होना चाहिये।

अर्हत तीर्थंकर जब आठों कर्मो का क्षय कर के सिद्ध हो जाते है तब उनका जन्म, जरा, मरण आदि समस्त दुःख समाप्त हो जाते है क्योकि संसार में दु खो का कारण हमारे कर्म व शरीर है सिद्धावस्था मे न कर्म रहते हैं, न शरीर अत: पूर्णानन्द प्राप्त होता है। फिर इस संसार में जन्म लेने या आने का कोई कारण ही नही रहता। अन्य संप्रदायों वाले भगवान अवतार लेते है ऐसा मानते है, पर जैन धर्म उस अवतारवाद को नही मानता। उसकी यह मान्यता है कि भगवान कोई एक व्यक्ति विशेष नही, गुण विशिष्ठ व्यक्ति है। ऐसे एक नही अनन्त व्यक्ति या आत्माये परमात्म पद प्राप्त करके सिद्ध, बुद्ध व मुक्त हो चुके है।

तीर्थंकरों की वाणी को धारण करने वाले, उसका प्रचार और जीवन मे उसे उतारने वाले आचार्य कहलाते है। तीर्थंकरो की अविद्यमानता में आचार्य ही तीर्थंकरो का धर्मशासन चलाते है। स्वयं सत् आचार का पालन करते है। दूसरो को सदाचार में प्रवृत्त करते है। इसी तरह जो स्वयं आगमादि शास्त्रों को पढते हैं

व दूसरो को पढाते हैं, उनको पाठक या उपाध्याय कहा जाता है। जो साधु आचार का पालन करते हैं, साधना मे रत या प्रवृत्त रहते हैं, उन्हे साधु कहा जाता है। ऐसे पाच विशिष्ट गुणो व पदो पर जो आरूढ हैं, उन्हे पच परमेष्ठि कहते हैं। उनको जो नमस्कार किया जाता है, उस सूत्र पाठ का नाम 'नवकार मत्र' या 'नमस्कार मत्र' है। यह जैन धर्म का सबसे बडा मत्र है। इसका जप व ध्यान नित्य व नियमित रूप मे करना चाहिये।

इन पच परमेष्ठियो के साथ मोक्ष मार्ग के साधन रूप सम्यग दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप इन चार साधना मार्ग या धर्मों को जोड देने से नवपद बन जाते हैं। इस मे अर्हंत व सिद्ध देवपद मे हैं। आचार्य उपाध्याय साधु गुरुपद मे व दर्शन, ज्ञान चारित्र, तप, धर्म पद मे। इसलिए देवगुरू व धर्म त्रिपुरी का समावेश इसमे हो जाता है। इसी तरह अर्हंत व सिद्ध हमारे साध्य हैं, आचार्य उपाध्याय साधक हैं और दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये साधना हैं। नवपद मे साध्य अर्थात ध्येय, साधक अर्थात ध्याता, साधना अर्थात् ध्यान इन त्रिपुटियो का भी समावेश हो जाता है, इसलिए इस नवपद को सिद्धचक्र कहते हैं। एक गोलाकार चक्र बनाकर उसके बीच मे अर्हत, उसके ऊपर सिद्ध, अर्हत की दाहिनी ओर पास मे आचार्य, नीचे उपाध्याय व दाहिनो ओर साधु, इस तरह पच परमेष्ठि चारों पदो के बीच मे दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप चार पदो को लिखकर नवपद यत्र या सिद्धचक्र का गट्टोजी बनता है। इस यत्र के सामने बैठकर या इसे अपने हृदय कमल पर स्थापित करके ध्यान किया जाता है। श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनो सम्प्रदायो मे कुछ भेद के साथ सिद्धचक्र की आराधना या साधना की जाती है। यह भी जैन धर्म की एक विशिष्ट ध्यान की प्रणाली है।

भगवान महावीर चौबीसवें या अन्तिम तीर्थंकर थे, जिनकी वाणी आज भी मोक्ष मार्ग की ओर प्रवृत्त करती है। उन्ही का धर्म शासन आज चल रहा है जिसकी छत्रछाया मे हजारो साधु साध्वी व लाखो श्रावक श्राविकायें आत्मिक धर्म की आराधना करते हुए सिद्धि या मुक्ति के प्रति गतिशील हैं।

भगवान महावीर का $12\frac{1}{2}$ वर्षों का साधना काल प्रधानतया ध्यान मे ही बीता। ध्यान के साथ सवट व मौन तो हो ही जाता है इसलिये महावीर की साधना प्रणाली मे ध्यान का सबसे ऊचा स्थान रहा। सो आवश्यक की प्रत्येक क्रिया मे कायोत्सर्ग ध्यान और अभ्यत तप मे भी स्वाध्याय व ध्यान का प्रमुख स्थान है। पर जब से साधु साध्वी उद्याना, जगला व गिरी गुफाओ मे रहना छोड कर नगरो मे, गावो मे रहने लगे व लोक सम्पर्क बढता गया त्यो 2 ध्यान की साधना कमजोर पडती गई। बाह्य प्रवृत्तियो मे मन इतना व्यस्त व अभ्यस्त हो गया कि वह एकाग्र व स्थिर हो नही पाता जो ध्यान के लिये बहुत आवश्यक है।

इधर कुछ वर्षो मे सारे विश्व मे ध्यान का आकर्षण बढता जा रहा है क्यो कि परिग्रह की वृद्धि, सुख सुविधाओ की कामना और भौतिक आकर्षण आदि के कारण जीवन मे उत्तरोत्तर अशान्ति बढती जा रही है। अत शान्ति की अभिलाषा या लालसा बढना स्वाभाविक है और शान्तिका सबसे प्रमुख उपाय है ध्यान—क्यो कि इससे मानसिक चचलता, सग्रह वृत्ति और ममत्व पर अकुश लगता है। भटकते हुए मन को स्थिर व एकाग्र होकर जब भगवान मे या आत्म चिंतन मे टिकाव होता है, तब गहरी शान्ति का अनुभव होता है। शाति मे ही सुख है, अशात को सुख कहा ?

जैन धर्म मे जो ध्यानाभ्यास छूट सा गया था, उसे पुन चालू करना बहुत आवश्यक समझ कर अब ध्यान के विषय मे विशेष चिंतन व प्रवृत्ति करना प्रारम्भ हुआ है। आचार्य तुलसी जी से मैंने कलकत्ते मे जब से इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए प्रेरणा दी तब से तेरापथ सप्रदाय मे ध्यान की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। पहले सामान्य प्रवृत्ति रही होगी पर उसकी ओर अधिक आकर्षण और शक्ति लगाने की बात इधर कुछ वर्षों मे प्रेक्षाध्यान शिविर के रूप मे हुई है। मुझे यह देख कर परम सतोष होता है कि प्रगति तेजी से है। जैन विश्व भारती मे इसके लिये एक स्वतन्त्र बडा भवन बन गया है और शिक्षण प्रशिक्षण, अभ्यास का क्रम ठीक से चल रहा है।

मैंने इस विषय पर काफी चिंतन किया है। अन्य धर्म सम्प्रदायो व व्यक्तियो द्वारा जो ध्यान प्रणालिया चालू

है उनको भी जानने, समझाने का यथाशक्ति प्रयास किया है। मेरे अनुभवी गुरु पूज्य सहजानंद घनजो से भी मुझे कुछ जानकारी व प्रेरणा मिलो है। इन सबके आधार से मैने प्राथमिक और सरल ध्यान पद्धति पर कुछ चितन किया है जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपनाते हुए अच्छी प्रगति कर सकता है।

हमारे प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग पांचवां आवश्यक है। उसमे ध्यान का समावेश था ही, पर पहले जो श्वासोश्वास की संख्या नियत थी, उसकी जगह अब नवकार मत्र व लोगस्स का ध्यान प्रारम्भ कर लिया गया, जो अभी दीक्षा ध्यान के रूप मे चालू किया गया है। बौद्ध ध्यान प्रणाली में जो विपश्यना के नाम से प्रसिद्ध है, श्री सत्यनारायण गोयनका उसके प्रशिक्षण में पूर्ण प्रयत्नशील है।

मेरी राय में प्रत्येक जैनी को ध्यान की प्राथमिक व सरल विधि को अपनाते हुए प्रेक्षा ध्यान की ओर गतिशील होना चाहिये। भ. महावीर हमारे सबसे निकटवर्ती तीर्थंकर व परमोपकारी है। अतः सर्वप्रथम उन्ही के नाम स्मरण के साथ उन्ही के ध्यान करने की विधि प्रारम्भ कर देनी चाहिये। उस विधि का कुछ रूप इस प्रकार हो सकता है। विशेष चिंतन करने पर विविध रूप भी खोजे व अपनाये जा सकते है। यह सुगम विधि है। अतः सभी अपना सकते है।

भगवान महावीर के किसी भव्य एवं आकर्षक मूर्ति व चित्र के सामने उन्ही की तरह खड़े होकर एव पद्मासन या सुखासन मे बैठ कर पहले कुछ देर के लिए उनकी आंखो से हमारी आंखों को मिलाके देखते रहे। थोडे समय के लिए झटक करे। उनकी शात व भव्य मूर्ति पर अपनी आंखो को केन्द्रित करे। जब तक आखो मे थकान अनुभव न हो, पानी न आवे, तब तक एक टक ध्यान लगाये रहे।

भगवान महावीर के जीवन प्रसंग बहुत ही प्रेरणादायक व उद्बोधक है। अतः साधनाकाल के एक-एक प्रसंगो के काल्पनिक चित्र मनोभूमिका के सामने उपस्थित करते हुए अपने को वहां कुछ समय के लिए टिकाये रखने का प्रयत्न किया जाय। यह महावीर के ध्यान की प्राथमिक व सरल विधि है। बैठे हुए, खड़े हुए, सोते हुए, हम आंखों को बन्द करके भगवान् महावीर की दीक्षा से लेकर केवल ज्ञान तक के प्रसंगों में एक एक को सामने लाते जावे। जैसे भगवान महावीर की दीक्षा का महोत्सव हो रहा है, हजारों नर-नारी उत्सव देखने के लिए सड़कों, मकानों व छतों पर बैठे हुए भगवान की ओर मन को एकाग्र करके टकटकी लगाये निहार रहे है। मन्द गति से धीरे-धीरे जुलूस आगे बढता जा रहा है। स्थान-स्थान पर भगवान का सम्मान किया जा रहा है। वे मुट्ठियां भर भर के मुद्राएं आदि उछाल रहे है। प्रभु के ऊपर लोग पुष्प बरसा रहे है। आगे चल कर शहर के बाहर उद्यान में वृक्ष के नीचे प्रभु सर्व वस्त्र अलंकारों को त्याग करके पचमुष्ठि लोच कर रहे है। चारो ओर से जय जयकार बोली जा रही है। कुटुम्बीजनो व भावुक व्यक्तियों की आंखों मे अश्रुधारा बह रही है। प्रभु निश्चल है। उस दृश्य पर ध्यान को टिकाइये।

इसके बाद महावीर विहार करके शूलपाणियक्ष के मन्दिर के आगे पहुचते है। पुजारी से वहां रात भर रहने की आज्ञा मागते है। पुजारी मना करता है। क्यों कि यक्ष क्रूर है। वहा रात भर रहना मौत को निमन्त्रण देना है। फिर भी महावीर पुजारी को समझाकर उसी मन्दिर मे टिकते है। यक्ष नाना प्रकार के भय दिखाता है। मरणान्तिक कष्ट देता है। पर महावीर अविचल व शान्त रहते है। यक्ष पर तनिक भी रोष, द्वेष नही करते। इसका प्रभाव यक्ष पर पड़ता है। अन्त में वह क्षमा याचना करते हुए भक्त बन जाता है। इस प्रसंग मे भगवान् महावीर के समत्व पर विशेष चिन्तन करना चाहिये। इससे हमारे ध्यान में स्थिरता आयेगी। इसी तरह इसके बाद क्रमश. ग्वालिये के उपसर्ग, चण्डकौशिक, कठपुतली, कान मे कीले ठोकने, यन्तरी संगमदेव आदि एक एक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग परिसह के प्रसग मनोभूमिका पर उतारते रहिये और उन पर मन को अधिकाधिक समय तक केन्द्रित रखने का प्रयत्न करिये। इससे बाहर की ओर भटकता हुआ चचल मन शान्त और स्थिर हो जायेगा। चित्र मे परम शान्ति और आनन्द का अनुभव होगा। अब तो इन सभो प्रसंगो के भव्य चित्र भी बन गये है, अतः एक-एक चित्र को सामने रखते हुए उस पर ध्यान जमाइये।

इसके बाद भगवान् महावीर के दीक्षित साधु-साध्वियो और श्रावक-श्राविकाओ के उद्बोधक जीवन-प्रसगो को फिल्म के एक-एक पट्ट की तरह सामने उपस्थित करके मन को केन्द्रित करते जाइये, चन्दनबाला के दान का प्रसग कितना भव्य है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की कायोत्सग मुद्रा मे मन के उतार चढाव का प्रसग कितना उद्बोधक है। कामदेव आदि श्रावको को कैसे-कैसे प्रसगो से गुजरना पडा है। ऐसे अनेकानेक साधका के प्रसगो को सामने लाते जाइये, व मन को टिकाते जाइये। □

नेत्र और रूप

'रूप' नेत्र का विषय है। मनुष्य के मनोविकार को जागृत करने के लिए नेत्र बहुत काम करते हैं। जिधर आँखें उठाते हैं, उधर ही उन्हें खींचने वाले प्रलोभन नजर आते हैं। नाटक, सिनेमा, नृत्य, सगीत और रग रूप—ये सब मिलकर मन पर आक्रमण करते है, प्रसुप्त मन को जागृत करते हैं। प्राचीन ऋषियो ने "नर्तन गीत वादन" कहकर इन सबका निषेध किया है। ब्रह्मचर्य के नियमो मे दर्पण देखने का भी निषेध किया है क्योंकि दर्पण मे देखने से भी विकार जागृत होता है। अत नेत्र सयम ब्रह्मचर्य के लिए आवश्यक है।

मन्दिर का भूमि खनन प्रारम्भ

समाज के युवा उत्साही कर्मठ कार्यकर्ता श्री किशनचन्द जैन सपत्नीक
मन्दिर निर्माण से पूर्व भूमि खनन प्रारम्भ करते हुए

मन्दिर निर्माण का शिलान्यास

मुनि श्री जयानन्दजी महाराज सा की निश्रा मे
देहली निवासी सेठ श्री मणिलाल डोसी सपत्नीक श्री महावीर
जैन श्वे० मन्दिर निर्माण का शिलान्यास करते हुए

निर्माणाधीन श्री महावीर जैन श्वे० मन्दिर

□ स्व० श्री ईश्वरलाल जैन
भू.पू. अध्यक्ष,
श्री मुलतान जैन श्वे० सभा, जयपुर

भारत की प्रसिद्ध गुलाबी नगरी एवं राजस्थान की राजधानी जयपुर का अपना नया आकर्षण है जहां दूर देशांतर (देश-विदेश) से लोग भ्रमणार्थ आते है। और आनन्द विभोर हो जाते हैं। भारत की स्वतन्त्रता के बाद जन संख्या की वृद्धि के साथ-साथ जयपुर का बहुत अधिक विकास एवं कल्पनातीत विस्तार हुआ और अनेक नई नई कालोनियां बन गई।

शहर से बाहर उन कालोनियों का जितना विस्तार हुआ उस प्रमाण से धार्मिक उपासना व सेवा पूजा के लिये मन्दिर, उपाश्रय आदि का निर्माण नहीं हो पाया। कालोनी से दूर मन्दिर या उपाश्रय मे आबाल-वृद्ध, स्त्री, पुरुषो और बच्चो का नियमित रूप से नित्य दर्शन पूजन व उपासना के लिये जाना सम्भव नहीं हो तो अपने धार्मिक सस्कार कैसे बने रह सकेंगे ? यह बात दिन प्रति दिन धार्मिक वृत्ति के लोगो को चुभने लगी, इन विचारधाराओ मे भगवान महावीर की महान् शासन परम्परा की महिमा को गौरवान्वित करने के लिये श्री मुलतान जैन श्वेताम्बर सभा ने जयपुर की आदर्श नगर कालोनी मे एक आदर्श मन्दिर के निर्माण का निर्णय कर यह महान् कार्य अपने हाथ मे लिया।

पाकिस्तान के मुलतान नगर जैन मन्दिर की लाई हुई जमा पूंजी से आदर्श नगर कालोनी मे मुख्य सड़क के किनारे 1300 वर्गगज भूमि खरीद ली गई और शुभ मुहूर्त में जयपुर के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक एवं महान् तपस्वी श्री अमरचन्दजी नाहर के कर कमलो द्वारा भूमि पूजन का मांगलिक कार्यक्रम हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ।

मन्दिर के नक्शे आदि के सम्बन्ध में आनन्दजी कल्याणजी की पेढी, अहमदाबाद से सम्पर्क स्थापित किया गया, पेढ़ी के प्रमुख एवं जैन समाज क आगेवान श्री कस्तूरभाई लालभाई ने व्यक्तिगत तौर पर भी बहुत रुचि लेकर वहा के सोमपुरा (मिस्त्री)

27	गणधर सख्या	11	40	प्रथम गणधर	इन्द्रभूति
28	साधु सख्या	14 000	41	प्रथम आर्या	चन्दनबाला
29	साध्वी सख्या	36,000	42	मोक्षस्थान	पावापुरी
30	वैक्रिय लब्धि वाले	700	43	मोक्षतिथि	कार्तिक वदी अमावस
31	वादी सख्या	400	44	मोक्षसलेखना	2 उपवास
32.	अवधि ज्ञानी	1,300	45	मोक्षआसन	पद्मासन
33	केवली	700	46	अन्तरमान	नील (चरमजिनेश्वर)
34	मन पर्यवज्ञानी	500	47	गणनाम	मानव
35	चौदह पूर्वधारी	300	48	योनी	महिष
36	श्रावक सख्या	1,59,000	49	मोक्ष परिवार	एकाकी
37	श्राविका सख्या	3,18,000	50	भव सख्या	27 भव
38	शासन यक्षनाम	ब्रह्म शान्ति	51	कुल गोत्र	इक्ष्वाकु
39	शासन यक्षिणी नाम	सिद्धायिका	52	गर्भकालमान	9 मास 7 दिन

सच्चा भूषण

'केयूर–बाजूबद, चद्रमा के समान उज्ज्वल हार, स्नान, उबटन या सुन्दर लेप, फूल और सवारे हुए बाल मनुष्य की शोभा नहीं बढा सकते। मनुष्य द्वारा धारित एक मात्र सुसस्कृत वाणी ही उसको अलकृत कर सकती है। अन्य भूषण नष्ट होते रहते हैं, लेकिन वाणी का भूषण सच्चा भूषण है जो कभी नष्ट नहीं होता।'

–भर्तृहरि

विज्ञापनदाताओं के प्रति
हार्दिक कृतज्ञता सहित
'महावीरा' में प्रकाशित
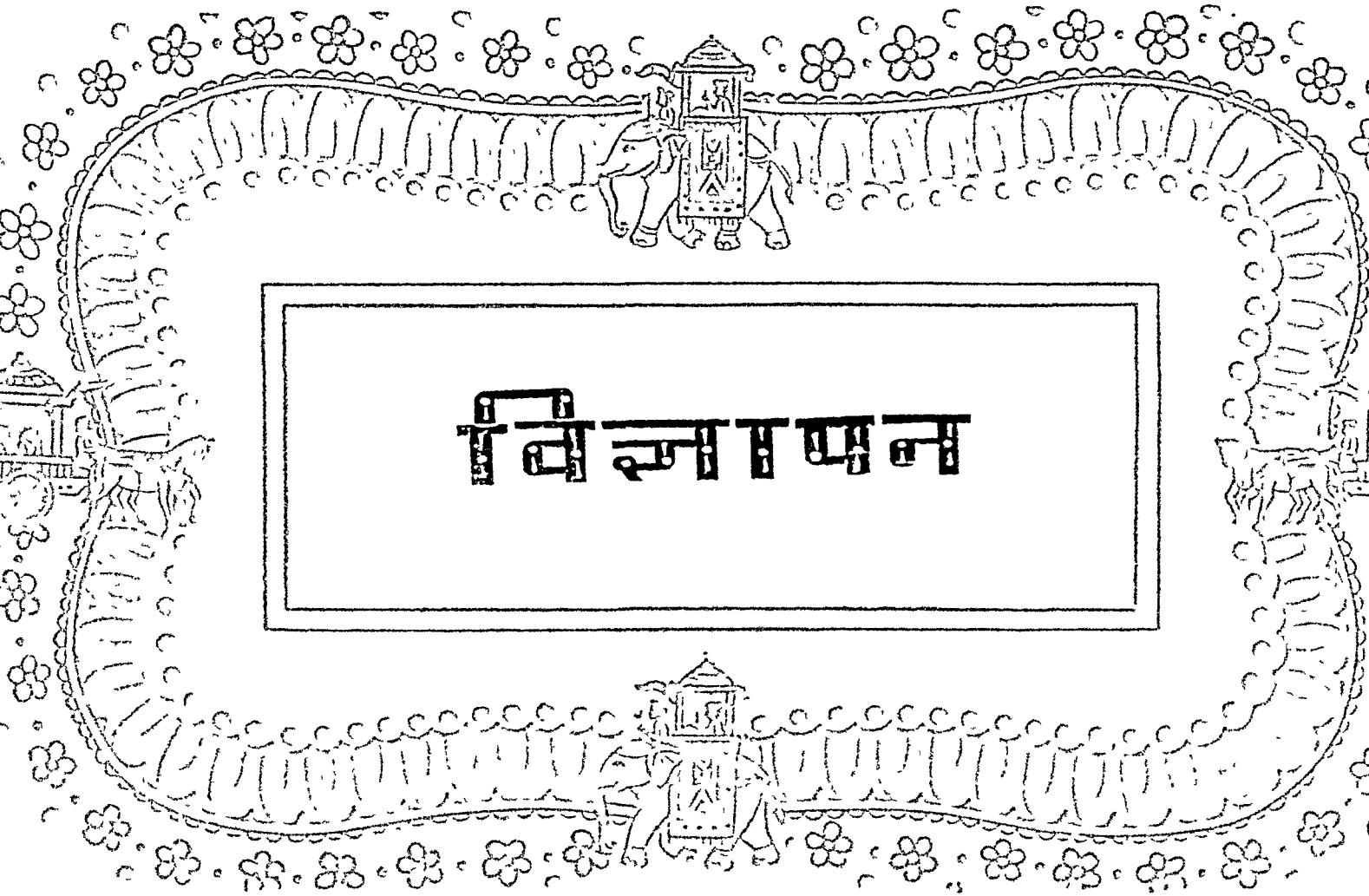
जगल मे जा रह छ मित्रो न पक जामुन का पेड दख कर जामुन खाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु सभी के विचार चिन्तन मे भिन्नता थी। प्रथम वाला जड से ही पड को उखाड डालो, यह कृष्ण लेश्या हैं। दूसर ने कहा पेड को जड से न उखाड़ कर तने से काट डालो यह नील लेश्या को इ गित करता हे। तीसरा बोला अरे तना काटने स क्या फायदा, हमें जामुन ही तो खाने हैं, केवल शाखायें ही काट डालो-यह कापोत लेश्या हैं। चौथ मित्र ने शाखाओं की अपक्षा डालिया काट कर ही जामुन प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की-यह तेज लेश्या हैं। पांचवे ने कहा डालियां काटने स क्या फायदा, केवल जो जामुन क गुच्छे पड मे लगे हैं, उसे तोड़ कर ही खा लें, यह पदम लेश्या कहलाती हैं। छठ मित्र से न रहा गया, वह बोला दखो। पेड के नीचे भी पक हुए जामुन गिर पड़े हैं, आओ। हम सभी इन्हीं को खा कर अपनी भूख की तृप्ति कर ल-यह शुक्ल लेश्या को इ गित करता हैं। जरा चिन्तन करे, हमारा स्थान कहां हैं ?

'जो मनुष्य क्रोधी पर क्रोध नही करता, अपितु क्षमा करता है—वह अपनी और क्रोध करने वाले की महा सकट से रक्षा करता है। वह दोनो का रोग दूर करने वाला चिकित्सक है।'

भेद ज्ञान है

[illegible]

[illegible]

दु:ख दे के सुख मत लो।

सुख देकर के सुख लो।।

श्रीमद् राजचन्द्र साधना मन्दिर

सोंथली वालों का रास्ता

जौहरी बाजार, **जयपुर–३०२००३**

पंडित वह है जो धर्म के अनुसार आचरण करता है। जो हितकर वचन बोले, वही सच्चा वक्ता है और जो दूसरों का मान-सम्मान करे वही दाता है।'

'इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है-असीम है।'

—'उत्तराध्ययन'

संसार में परिग्रह के समान प्राणियों के लिए दूसरा कोई जाल फंदा व बंधन नहीं है।
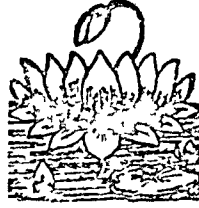
— प्रश्न व्याकरण

आर. एस. ओसवाल एण्ड कं०

1065, बर्तन मार्केट, सदर बाजार,

देहली–110006

दूरभाष शाखा 515224, निवास 669711
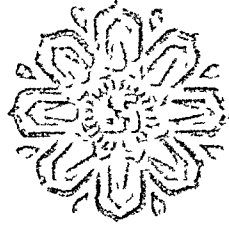
इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है-असीम है।

— उत्तराध्ययन

'ज्ञान का परम ध्यान पर स्वनि श्रम य का आश्रय न लेना है।

— आचारांग

'सिर मुड़ा लेने से कोई श्रमरा नही होता, ओंकार का जय करने से कोई ब्राह्मण नही होता, जगल मे रहने से कोई मुनि नही होता और कुशचीवर, वल्कल धारण करने से कोई तापस नही होता।'

–'उत्तराध्ययन'

प्रिय वचन बोलने से सभी प्राणी प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए सदा प्रियवचन ही बोलना चाहिए। बोलने में क्या दरिद्रता।'

'रोगी, निर्धन, परदेशी और शोक पीड़ित मनुष्य के लिए मित्र का दर्शन औषध रूप है।'

'कुछ व्यक्तियों की मुलाकात अच्छी होती है किन्तु सहवास
अच्छा नहीं होता। कुछ का सहवास अच्छा रहता है
मुलाकात नहीं। कुछ एक का मुलाकात भी अच्छी होती है
और सहवास भी। कुछ का न सहवास अच्छा होता है
और न मुलाकात ही।

— स्थानांग

'सभी पदार्थों पर से आसक्ति हटा लेना ही अपरिग्रह व्रत है ।'

'जैन दर्शन'

'जो शुद्ध भाव से ब्रह्मचर्य पालन करता है, वस्तुत. वही भिक्षु है।'

—'प्रश्नव्याकरण'

Manna Lal Soorana

Surana House,

Subhash Marg, 'C' Scheme,

JAIPUR-302 001

प्रकाशचन्द्र तृतीया

'कुछ लोग अपने सुख की खोज मे दूसरो को दुख पहुचा देते है।'

–'आचारांग'

'चोरी करने से गुण छिप जाते हैं, विद्या निकम्मी हो जाती है और बदनामी सिर पर चढ़ कर बोलती है।'

—'ज्ञानार्णव

'प्राण वध (हिंसा) चंड है, रौद्र है, क्षुद्र है, अनार्य है,
करुणा रहित है, क्रूर है और महाभयंकर है।'

—'प्रश्नव्याकरण'

'क्रोध को शान्ति से, मान को मृदुता-नम्रता से, माया को ऋजुता-सरलता से और लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिये।'

—'दशवैकालिक
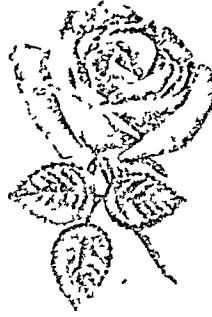
'अहिंसा की साधना से बढ़ कर श्रेष्ठ दूसरी कोई साधना नहीं है।

— आचारांग

'मनुष्य जन्म निश्चय ही बडा दुर्लभ है ।'

—'उत्तराध्ययन'

विद्या और तप से ही दुःख निवृत्ति होती है।

—'योगसूत्र

'अपने छिद्र अर्थात् अपनी कमजोरी को कभी प्रकट नही करना चाहिए ।'

जो इस जन्म में परमात्मा की लिए साधना नहीं करता उसे मृत्यु के समय पछताना पड़ता है। —सा०नि

'विनयहीन व्यक्ति मे सद्गुण नही ठहरते ।'

—'उत्त० चूर्णि'

S. P. ENTERPRISES

BOMBAY

मनमोहनलाल जैन
शान्तिदेवी जैन

रामाकृष्णापुरम
नई दिल्ली

'कुछ व्यक्ति सेवा आदि महत्वपूर्ण कार्य करते है ।'
किन्तु उसका अभिमान नही करते ।
कुछ अभिमान करते है, किन्तु कार्य नही करते ।
कुछ कार्य भी करते है, अभिमान भी करते है ।
कुछ न कार्य करते है, न अभिमान ही करते है ।'

—'स्थानांग'
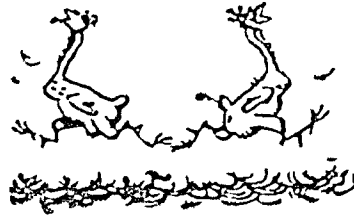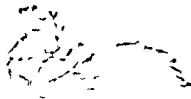
anufacturers
Jaipur-302002
Dealers
Bengal Westcoast Orient & Rohit Paper Mills
Ashoka Paper Mills
Ajanta Paper & General Products Pvt Ltd
Bombay

कृष्णा स्टोर

किनारी बाजार,

आगरा

'जो दूसरों के सुख एवं कल्याण का प्रयत्न करता है वह स्वयं भी सुख एवं कल्याण को प्राप्त होता है।

—'भगवतीसूत्र'

'न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न कभी होगा ही कि जो चेतन है, वे कभी अचेतन जड हो जाए, अचेतन वे चेतन हो जाए ।'

—'स्थानांग'

'जिस काम म जीवन की वत्ति चलती हो, उस काम का योग जैसे पुन करते हैं उसी प्रकार वैराग्य की बातों के अनुप्रेक्षा का चिन्तन भी पुन पुन करते रहना चाहिए।'

— उमा स्वाति

'स्वाध्याय के समान दूसरा तप न कभी अतीत मे हुआ है, न वर्तमान मे कहीं है और न भविष्य मे कभी होगा।'

—'बृहत्कल्पभाष्य'

'जो क्षण वर्तमान में उपस्थित है वही महत्वपूर्ण है, अतः उसे सफल बनाना चाहिए।

—'सूत्रकृतांग

'जो बुद्धिमान मनुष्य शरीर, वचन, मन से संयत है, वास्तव मे वही सुसयमी माने जा सकते हैं।'

—'धम्मपद'

'जन्म के साथ मरण, यौवन के साथ बुढ़ापा, लक्ष्मी के साथ विनाश निरन्तर लगा हुआ है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु को नश्वर समझना चाहिए।'

—'कार्ति केयानु प्रेक्षा'

‘हवा मे रहित स्थान मे जैसे दीपक निर्विघ्न जलता रहता है,
वैसे ही राग की वायु से मुक्त रहकर (आत्म मन्दिर मे)
ध्यान का दीपक सदा प्रज्वलित रहता है।’

—‘भाव पाहुड’

'ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए, जो हित, मित और ग्राह्य हो।

—'प्रश्नव्याकरण'

'दुःख आ जाने पर भी मन पर संयम (समता) रखना चाहिए।'

— सूत्रकृतांग'

'मन से कभी भी बुरा नही सोचना चाहिए।
वचन से कभी भी बुरा नही बोलना चाहिए॥'

—'प्रश्नव्याकरण'

ज्ञान का सार यही है कि ज्ञान रहते उस का उपयोग करना चाहिए तथा उसके अभाव में अपनी अज्ञानता स्वीकार कर लेना चाहिए।

'धर्म एक जलाशय है और ब्रह्मचर्य एक शान्तिदायक तीर्थ।
इनमे स्नान करने से आत्मा शान्त और निर्मल होती है।'
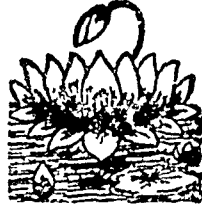
'जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है, उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता-जैसे ज्वरग्रस्त मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता।'

'आज नही मिला तो क्या है कल मिल जायगा' जो यह विचार कर लेता है, वह कभी अलाभ के कारण पीड़ित नही होता।'

—'उत्तराध्ययन'

'उदार पुरुषो के लिए सारा ससार कुटुम्ब के समान है ।'

'स्नेहीजन का रोष क्षणिक होता है ।'

'ऋण, शत्रु और रोग को निर्मूल कर देना चाहिए ।'

'संसार की तृष्णा भयंकर फल देने वाली विष-बेल है।'

—'उत्तराध्ययन'

इच्छा को अनिच्छा से जीतकर साधक सुख पाता है।

—'ऋषिभाषित'

'सज्जन सदा गुणों को ही ग्रहण करते हैं।'

—'आदिपुराण'

मर्यादा का अतिक्रमण कदापि नहीं करना चाहिए

'मुझे अपने धन के नष्ट हो जाने की सचमुच कुछ भी चिंता नहीं है क्योंकि भाग्य से ही धन आता जाता है। मुझे दुःख यही है कि धन के क्षीण हो जाने से मित्रों की मित्रता भी शिथिल पड जाती है।

—'मृच्छकटिक'

'जिसका मोह नहीं होता उसका दुःख नष्ट हो जाता है जिसका तृष्णा नहीं होती, उसका मोह नष्ट हो जाता है। जिसका लोभ नहीं होता उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है और जो अकिंचन (अपरिग्रही) है उसका लोभ नष्ट हो जाता है।'

—'उत्तराध्यपन'

सदा अमृत रूप से चिंतन करने से विष भी अमृत हो जाता है और सदा मित्र भाव से चिंतन करने से शत्रु भी मित्र हो जाता है।'

—'योग वासिष्ठ'
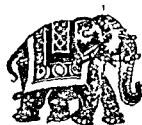
'विशाखा नक्षत्र के उपरांत वर्षाकाल, प्रसव के उपरात नारी का यौवन, प्रणाम करने के बाद सत्पुरुषो का क्रोध और याचना करने के बाद मनुष्य का गौरव समाप्त हो जाता है।'

'दूसरों के गुण ग्रौर ग्रपने ग्रवगुण ढूढो ।'

— बेंजामिन फ्रैंकलिन'

यदि मैं ग्रंध को कुए के सामन देखू, तो मरा चुप बठना पाप है ।'

—'शेख सादी'

'विद्वानो के सत्सग से शास्त्र ज्ञान, शास्त्र-ज्ञान से विनय और विनय से लोकानुराग प्राप्त होता है। लोकानुराग से फिर क्या प्राप्त नही हो सकता है ?'

'चिथड़े का निरादर मत करो क्योंकि उसने भी किसी समय
किसी की लाज रखी थी ।'

— शेख सादी'

'रहिमन वे नर मरि चुके, जो कहूं मांगन जाहि ।
उनसे पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ॥'

'मूर्ख अपने घर मे, मालिक–मुखिया अपने गांव मे और राजा अपने राज्य ही मे आदर पाता है। लेकिन विद्वान सर्वत्र सम्मानित होता है।'

—'चाणक्य'

'चार प्रकार के सहवास हैं-
देव का देवी के साथ–शिष्ट भद्र पुरुष, सुशीला भद्र नारी।
देव का राक्षसी के साथ–शिष्ट पुरुष, कर्कशा नारी।
राक्षस का देवी के साथ–दुष्ट पुरुष, सुशीला नारी।
राक्षस का राक्षसी के साथ–दुष्ट पुरुष, कर्कशा नारी।'

–'स्थानाग'

मांगीलाल भंसाली

बी–170, जनता कालोनी,

जयपुर–302004

'चार प्रकार के पुरुष हैं-
कुछ व्यक्ति वेष छोड़ देते हैं किन्तु धर्म नहीं छोड़ते।
कुछ धर्म छोड़ देते हैं किन्तु वेष नहीं छोड़ते।
कुछ वेष भी छोड़ देते है और धर्म भी।
और कुछ ऐसे भी होते है जो न वेष छोड़ते हैं, न धर्म।'
—'व्यवहार सूत्र'

'जो अपने नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे उत्तम, जो पिता के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे मध्यम, जो मामा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे अधम् और जो श्वसुर के नाम से प्रसिद्ध होते हैं वे अधमाधम मनुष्य हैं।'

'केवल पढ लिख लेने, अर्थात शिक्षित होने से ही कोई विद्वान नही होता। जो इन गुणो को-सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानो के प्रति श्रद्धा और सुशीलता-धारण करता है, वही सच्चा विद्वान है।'

'जिस प्रकार तृण व काष्ठ से अग्नि, तथा हजारों नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार रागासक्त आत्मा काम भोगों से कभी तृप्त नहीं हो पाता।'

—'आतुर-प्रत्याख्यान
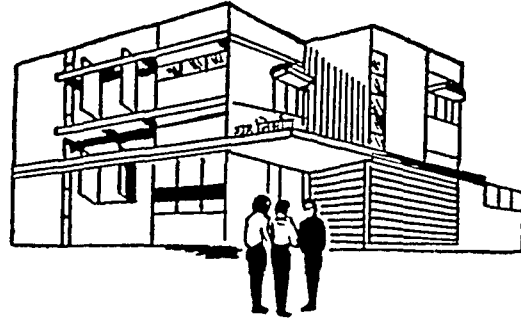
'विष से भी अमृत को, बालक से भी सुभाषित को, वैरी से भी अच्छे आचरण को और गंदी जगह से भी सुवर्ण को ग्रहण कर लेना चाहिए।'

—'मनु'

पराधीन जीवन व्यर्थ है, पर-स्त्रीगुण व्यर्थ है पराये घर मे पड़ी सम्पत्ति व्यर्थ है, पुस्तक ही में पड़ी रहने वाली विद्या व्यर्थ है।'

'मैंने आज तक कोई ऐसा आदमी नहीं देखा, जो प्रतिदिन जल्दी उठता हो, मेहनत करता हो और ईमानदारी से रहता हो, फिर भी दुर्भाग्य की शिकायत करता हो।'

—'एडिसन'

'भयंकर युद्ध में हजारों हजार दुर्दान्त शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा अपने आप को जीत लेना ही सबसे बड़ी विजय है।'

—'उत्तराध्ययन'

'इस जीवन में किए हुए सत्कर्म इस जीवन में भी सुखदायी होते हैं। इस जीवन में किए हुए सत्कर्म अगले जीवन में भी सुखदायी होते हैं।'

— स्थानांग

'जो केवल आशा के बल पर जीता है, वह भूखो मरेगा।'

—'फ्रैंकलिन'

'जिसका हृदय तो निष्पाप और निर्मल है, किन्तु वाणी से कटु एवं कठोर भाषी है, वह मनुष्य मधु के घड़े पर विष के ढक्कन के समान है।'

धनहीन मनुष्य को उसके मित्र, उसकी स्त्री और नौकर-चाकर तथा बंधु बान्धव सभी छोड़ देते हैं। वही जब धनवान हो जाता है तो सभी फिर उसके पास आ जाते हैं। यही संसार है।

—'चाणक्य'

सब प्रकार के आरम्भ और परिग्रह का त्याग सब प्राणियों के प्रति समता और चित्त की एकाग्रतारूप समाधि - बस इतना मात्र मोक्ष है।'

—बृहत्कल्प भाष्य

'जिस प्रकार हाथी स्नान करके फिर बहुत सी धूल अपने ऊपर डाल लेता है, वैसे ही अज्ञानी साधक साधना करता हुआ भी नया कर्ममल संचय करता जाता है।'

—'बृहत्कल्प भाष्य'
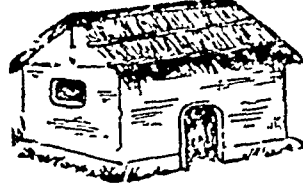
सदाचार ही परम धर्म है।'

— मनु'

'जिस प्रकार मुझ को दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार सभी जीवों को दुःख प्रिय नहीं है, जो ऐसा जानकर न स्वयं हिंसा करता है न किसी से हिंसा करवाता है—वह समत्व योगी ही सच्चा श्रमण है।'

'अनुयोगद्वार'

'लोकोत्तर महापुरुषों के चित्त को जानने में कौन समय है।
वह वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल
होता है।'

—'भवभूति'

'निरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश मे न रहना, सत्पुरुषो के साथ मेल जोल होना, अपनी कमाई से जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना—ये छह मानवलोक के सुख हैं।'

—'महाभारत'

'जो अपने लिये चाहते हो, वही दूसरो के लिए भी चाहना चाहिए, जो अपने लिये नही चाहते हो, वह दूसरो के लिए भी नही चाहना चाहिये-बस इतना मात्र जिन शासन है, -यही तीर्थंकरो का उपदेश है।'
—'बृहत्कल्पभाष्य'
VIRENDRA KUMAR JAIN
UTTAM CHAND JAIN
Uttam Sugar Factory
P.O. MANKRI
(Bulandshahar-U.P)
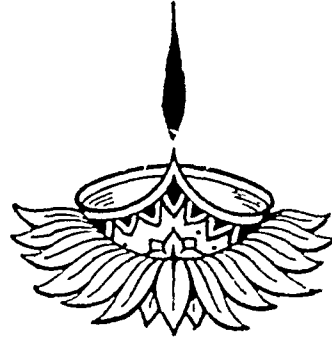
'ज्ञान से भावो (पदार्थों) का सम्यक बोध होता है, दर्शन से श्रद्धा होती है। चारित्र से कर्मों का निरोध होता है और तप से आत्मा निर्मल होती है।'

—'उत्तराध्ययन'
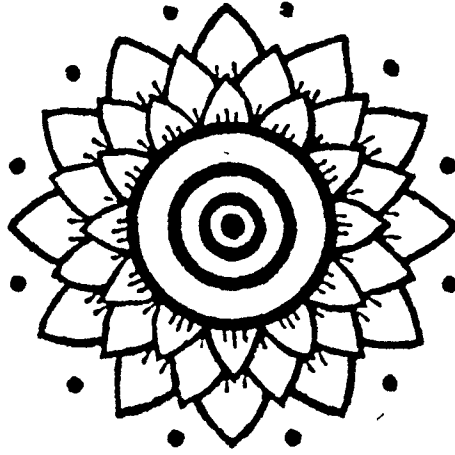
इसने मुझे मारा–कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं।
'यह मुझे मारता है' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं।
यह मुझे मारेगा' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं।

–'आचारांग'

'धन धान्य के प्रयोग अर्थात् लेन-देन मे, विद्योपार्जन मे तथा भोजन करने मे और व्यवहार मे लज्जा-सकोच न करने वाला सुखी होता है ।'

'स्वामी हम-तुम एक हैं कहन सुनन को दोय ।
मन से मन को तालिय कबहू न दो मन कोय ।'

—'रसनिधि'

जिसके बहुत से मित्र हैं, निश्चय जानो उसके एक भी मित्र नहीं है ।

—'अरस्तु'

'मूर्ख आदमी सपत्ति को पाकर उससे अपनी ही हानि कर लेता है।'

—'जातक'

'एक मूर्ख भी अकेला ऐसा प्रश्न कर सकता है, जिसका चालीस बुद्धिमान भी मिलकर उत्तर नहीं दे सकते।'

—'फ्रेंच लोकोक्ति'

'क्रोध को शान्ति से जीते, दुष्ट को साधुता से जीते, कृपण को दान से जीते और असत्य को सत्य से जीते।'

—'महाभारत'

"जो सच बोलना नही जानता वह तो खोटा सिक्का है, उसकी कीमत ही नही।'

—'महात्मा गांधी'

'मूर्ख आदमी अपने को बुद्धिमान समझता है लेकिन बुद्धिमान अपने आपको सदा मूर्ख समझने की चेष्टा करता है।

—'शेक्सपियर'

बुद्धिमान मनुष्य अपने अनुभवों से तथा अधिक बुद्धिमान दूसरों के अनुभवों से सीखता है।

—'चीनी सुभाषित'

'दान करने से गौरव प्राप्त होता है धन का सचय करने से नहीं । जलदान करने वाले मेघ की स्थिति सबके ऊपर है और जल का सचय करने वाले समुद्र की नीच ।'

'वाद-विवाद करना, लेन-देन करना, मांगना, मित्र के घर की स्त्रियो से मिलना-जुलना, हर काम मे अगुआनी करना —इन सबसे मित्रता टूट जाती है।'

कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगें सुख ऊपज, और ठग दुख होय ॥'

'विपत्ति म भी जो स्नेही बना रहता है, साथ नहीं छोड़ता, वही मित्र है।'

'अपने शक्ति-सामर्थ्य को जान कर तब किसी काम मे हाथ लगाना चाहिए ।'

सभा निवारी मत्य वाना चाणि ।

— उत्तराध्ययन

'सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखे। मैं सबको मित्र की दृष्टि से देखता हू।'

—'श्रुति'

'धन, जन, यौवन का गर्व मत करो, काल क्षण मात्र में सब कुछ नष्ट कर देता है।'

—'शंकराचार्य'

'आशा ही एक चीज है, जो सबके पास मिल सकती है। जिसके पास और कुछ नहीं होता उनके पास भी आशा तो रहती है।'

—'थेल्स

'जो वाणी का सयमी है, मनन करके बोलता है, विजयी है, ग्रर्थ धर्म को प्रकाशित करता है, उसका भाषण मधुर होता है।'

—'धम्मपद'

'अगर तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी बड़ाई करें तो अपने मुंह से अपनी बड़ाई मत करो।'

—'पैगम्बर'

SANMAN FILMS

Film Colony S M S Highway,

JAIPUR—302003

Phone 75483

JAI MATA DI

'दूसरे का सम्मान करो, लोग तुम्हारा भी सम्मान करेंगे।'

—'कनफ्यूशियस'

BHARATI FILM DISTRIBUTORS
N. R. KAPOOR & SONS PR. LTD.

Kapoor Niwas South Tukoganj,

INDORE (M P)

Branches JAIPUR—AMRAVATI

OM SHRI SAI RAM

'राग और द्वेष ये दो कर्म के बीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म ही जन्म मरण का मूल है और जन्म मरण ही वस्तुत दुःख है।'

—'उत्तराध्ययन'
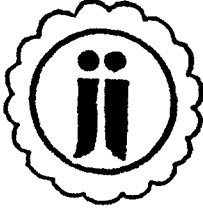
'हे दारिद्रय । तुम्हे नमस्कार है, क्योकि तुम्हारी कृपा से मैं सिद्ध पुरुष बन गया हू म सारे जगत को देखता हू , लेकिन मुझे कोई नही देखता । अर्थात् दरिद्र तो सबका मुह ताकता है लेकिन उस पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ती ।'

'सत्यवादी माता की तरह विश्वास पात्र होता है, गुरू की तरह लोगों का पूज्य होता है, तथा स्वजन की तरह वह सभी को प्रिय लगता है।'

—'भक्त परीक्षा प्रकीर्णक'
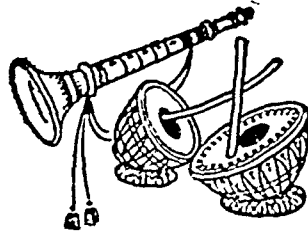
'वही अनशन तप श्रेष्ठ है जिससे कि मन अमंगल न सोचे, इन्द्रियों की हानि न हो, और नित्य प्रति की योग धर्म क्रियाओं में विघ्न न आए।'

—'मरण समाधि'

'देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर सभी ब्रह्मचर्य के साधक को नमस्कार करते हैं। क्योंकि वह एक बहुत दुष्कर कार्य करता है।'

—'उत्तराध्ययन'

'हित-अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम ।'

—'रहीम'

'जो कौड़ी का भी अपव्यय से बचाता है, लेकिन समय पर मुक्त हस्त से करोड़ों व्यय करता है—उस राजसिंह को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती।'

—'हितोपदेश'

'यदि तुम थोड़े ही मे अपना काम अच्छी तरह चलाना चाहते हो तो किसी चीज मे पैसा लगाने से पहले स्वयं से दो प्रश्न पूछ लिया करो।'

1–क्या मुझे सचमुच इस चीज की जरुरत है ?

2–क्या इसके बिना भी मेरा काम चल सकता है।'

—'सिडनी स्मिथ'

'जो निःस्वार्थ भाव से किसी का उपकार करता है, वही साधु है ।'

—'स्कन्दपुराण'

卐

'जाकी रही भावना जैसी तिन देखी प्रभु मूरति तैसी ।'

—'तुलसी'

'जो अपने आश्रितो को बाटकर स्वय थोडा ही खा लेता है, अधिक काम करके थोड़ा ही आराम करता है और मागने पर शत्रु को भी दान देता है, उस आत्मज्ञानी को अनर्थ स्पर्श नही करते ।'

—'महाभारत'

'भोग समय होते हुए भी जो भोगों का परित्याग करता है, वह कर्मों की महान निजर करता है। उसे मुक्ति रूप महा-फल प्राप्त होता है।'

—'भगवती'

'कछुआ जिस प्रकार अपने अंगो को अन्दर मे समेट कर खतरे से बाहर हो जाता है वैसे ही साधक भी अध्यात्मयोग के द्वारा अन्तर्मुख होकर अपने को पापवृत्तियो से सुरक्षित रखता है।'

—'सूत्र कृतांग'

ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मंत्र न हो, ऐसा कोई पौधा नहीं है जो औषध न हो, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो काम का न हो।

–'शुक्र'

'सदाचार ही परम धर्म है।'

—'मनु'

देवता भाव का भूखा है, न कि पूजा की सामग्री का

—'तिलक'

'चार प्रकार के घड़े होते हैं
मधु का घडा, मधु का ढक्कन ।
मधु का घडा, विष का ढक्कन ।
विष का घडा, मधु का ढक्कन ।
विषका घडा, विष का ढक्कन ।
(मानव पक्ष मे हृदय घट है और वचन ढक्कन)
जिसका अन्तर हृदय निष्पाप और निर्मल है साथ ही वाणी भी मधुर है, वह मनुष्य मधु के घडे पर मधु के ढक्कन के समान है।'

— स्थानांग'

'रोग होने के नौ कारण है–
अति भोजन
अहित भोजन
अति निद्रा
अति जागरण
मल क वेग को रोकना
मूत्र के वेग को रोकना
अधिक भ्रमण करना
प्रकृति के विरुद्ध भोजन करना
अति विषय सेवन करना।'

–'स्थानांग'
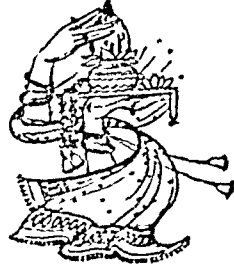
'जो वाणी से सदा सुदर बोलता है और कम से सदा सदाचरण करता है, वह व्यक्ति समय पर बरसने वाले मेघ की तरह सदा प्रशसनीय और जनप्रिय होता है।'

—'ऋषिभाषित'

'शिष्य गुरु के साथ पिता के समान व्यवहार करे।'

—'नीति वाक्य०'

'जो विनय में हीन है, उसका क्या धर्म और क्या तप ?'

—'विशेसा० भा०'

'दूसरों की गुप्त बातों को जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए ।'

'भूख लगे वही भोजन का समय है।'

—'नीतिवाक्यामृत'

'विना प्रीति का मानव कहीं ठौर ना पाव ।'

—'कबीर'

'थमते-थमते थमेंगे आंसू, ये रोना है कुछ हंसी नहीं है।'

—'मीर'

'भगवान महावीर, शान्ति, अहिंसा, प्रगति व कल्याण के प्रतीक थे। यदि हम सब उनके आदर्शों पर चलें तो न केवल हम सब का जीवन ही समृद्ध होगा, बल्कि समाज मे शांति व मित्रता भी आयेगी।'

—इन्दिरा गांधी

'तुच्छ मनुष्यो को जीविका की हानि का, मध्यम श्रेणी के मनुष्यो को जीवन-हानि का और उत्तम पुरुषो को मान हानि का बड़ा भय रहता है।'

—'महाभारत'
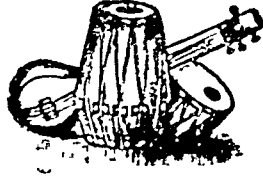
'बुद्धिमान मनुष्य अपना थोड़ा धन भी किसी को न दिखाए, क्योंकि उसके दर्शन से मुनि का मन भी लोभ में चंचल हो जाता है।'

—पंचतंत्र

'बुद्धिमान मनुष्य कभी उत्तम और अधम व्यक्तियों से विरोध न करें। विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियों से ही होना चाहिए।'

—'विष्णु पुराण'

'जिस गृहस्थाश्रम मे आनंदपूर्ण गृह, बुद्धिमान पुत्र, प्रियवदा स्त्री, इच्छा पूर्ति के लिए पर्याप्त धन, अपनी पत्नि से प्रीति, आज्ञाकारी सेवक, आतिथ्य-सत्कार, देव पूजन, प्रति दिन मधुर भोजन तथा सत्पुरुषों के सग-सत्सग का सुअवसर सदा सुलभ होता है, वह धन्य है।'

—'चाणक्य'

'मेधावी साधक को आत्मज्ञान के द्वारा यह निश्चय करना चाहिये कि-"मैंने पूर्व जीवन मे प्रमाद वश जो कुछ भूलें की हैं, वे अब कभी नही करूंगा।'

—'आचारांग'

'जिस देश में अपना मान सम्मान न हो, जीविका का साधन न हो अपने बन्धु-बान्धव न हों और न किसी विद्या की प्राप्ति हो वहां नहीं रहना चाहिए'

—'चाणक्य'

'गुप्त बात छह कानो मे पड़ने से खुल जाती है, चार कानो मे अर्थात् दो आदमियो के बीच मे स्थिर रहती है, इधर-उधर नही फैलती। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को उचित है कि इसे छह कानो मे न पड़ने दे।'

—'पचतंत्र'

'जिस प्रकार कोई चुपचाप लुकछिप कर विष पी लेता है, तो क्या वह उस विष से नहीं मरेगा ? अवश्य मरेगा। उसी प्रकार जो छिप कर पाप करता है तो क्या वह उससे दूषित नहीं होगा ? अवश्य हागा।'

—'सूत्रकृतागनियुक्ति'

'बन्धन चाहे सोने का हो या लोहे का बन्धन तो आखिर दु.ख कारक ही है। बहुत मूल्यवान दण्ड (डंडे) का प्रहार होने पर भी दर्द तो होता ही है।'

'ऋषिभाषितानि'

'हजार वाले स सौ, सौ वाले स दस और किसी ने यथा शक्ति थोडा सा भी दिया, तो भी सबके दान का फल बराबर है।'

'लज्जा, स्नेह, मधुर संभाषण, बुद्धि, यौवन की शोभा, पत्नी-प्रेम, स्वजनो के प्रति ग्रात्मीयता, सुख ग्रामोद-प्रमोद, धर्म, शास्त्र, देवभक्ति, गुरुभक्ति ग्रौर शौच-ग्राचार की बातें प्राणियो को पेट के भरे रहने पर ही सूझती है।'

—'पंचतंत्र'

'मर जाऊँ मांगू नहीं, अपने तन के काज।
पर कारज के कारन मांगत मोहि न लाज॥'

— कबीर

'जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो वैसा आचरण दूसरे के साथ न करे।

—'व्यास'

'अपने धर्म से विपरीत रहने वालों के प्रति भी उपेक्षा भाव (मध्यस्थता का भाव) रखो। अर्थात् जो कोई विरोधियों के प्रति उपेक्षा (तटस्थता) रखता है, वह समग्र विश्व के विद्वानों में अग्रणी विद्वान है।'

— आचारांग

विश्व के सभी महापुरुषों ने प्रमाद की निन्दा की है ।'

— दशवैकालिक

'पाप कर्म न करना ही वस्तुत: परम मगल है ।'

—'बृह० भा०'

'आयु और यौवन प्रति क्षण बीता जा रहा है।

—'आचारांग'

'परस्पर प्रेम के रहस्य को हृदय ही जान सकता है।'

—'भवभूति'

'दुर्दिन मे जो साथ दे, वही सच्चा मित्र है।'

—'पंचतंत्र'

'हर कहीं, हर किसी वस्तु म मन को मत लगा बैठिए

— उत्तराध्ययन

'मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि ये जहाँ होंगी वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा ।

—'तिलक'

घम ही मनुष्य का सच्चा ब-धु है, मित्र है और गुरु है। इसलिए स्वग एव मोक्ष के सुख देने वाले घम मे बुद्धि का स्थिर करना चाहिए।'

—'ग्रादिपुराण'

धम वही है जिसम ग्रघम न हो। सुख वही है, जिसम ग्रसुख न हा। नान वही है, जिसम ग्रनान न हा ग्रौर गति वही है जिसम ग्रागति लौटना न हा।'

—ग्रात्मानुशासन'

'सब सुखी हो, सब निरोग हो, सब कल्याण का साक्षात्कार
करे। दुख का अंश किसी को भी प्राप्त न हो।'

—'श्रुति'

'माली आवत देखि के, कलियां करी पुकार।
फूले फूले चूनि लिये, काल्हि हमारी बार ।।'

—'कबीर'

'पाप का न करना अच्छा है, पाप करने से पीछे संताप होता है। पुण्य का करना श्रेयस्कर है, क्योंकि उसे करने के बाद मनुष्य सतप्त नही होता।'

—'धम्मपद'

'जो सभा मे दूसरो की बुराई करता है, वह अपना ही अधिक दोप प्रकट करता है।'

देवेन्द्रकुमार जैन माकड़ी वाले

सरदार एग्रीकल्चर फार्म

माकड़ी

'मेघ की तरह दानी भी चार प्रकार के होते हैं–
कुछ बोलते है देते नही।
कुछ देते हैं किन्तु कभी बोलते नही।
कुछ बोलते भी हैं, और देते भी है।
और कुछ न बोलते है, न देते है।'

–'स्थानांग'

'भरा हुआ घडा शब्द नही करता लेकिन आधा भरा हुआ वहुत शब्द करता है-छलकता है। इसी प्रकार विद्वान एवं कुलीन पुरुष गर्व नही करते लेकिन गुणहीन मनुष्य वहुत दंभ दिखाते है।'
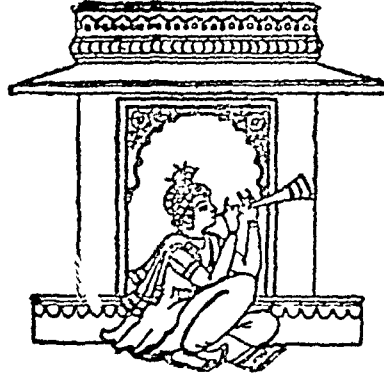
'अपना कमाया धन खाना उत्तम, पिता का कमाया धन खाना मध्यम, भाई का कमाया धन खाना अधम और स्त्री का कमाया धन खाना अधम से भी अधम है।'

"एक दिन फूल ने आर्त्त भाव से पुकारा—मेरे प्राण !
फल, तुम कहां हो ? फल ने सस्मित उत्तर दिया—नहीं जानते !
मैं तुम्हारे ही अन्तर मे छिपा बैठा हू।" —रवीन्द्रनाथ ठाकुर
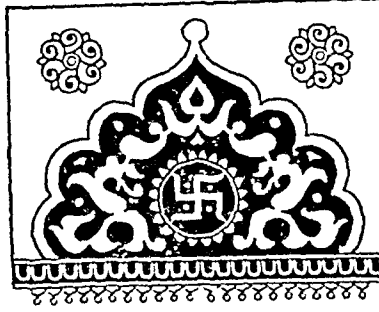
'बड़प्पन, पाण्डित्य कुलीनता और विवेक मनुष्य में उस समय तक रहते हैं जब तक शरीर में कामाग्नि नहीं प्रज्ज्वलित होती।'

—भर्तृहरि

'कलह से मनुष्य के घर नष्ट हो जाते है, कुवाक्य बोलने से मित्रता नष्ट हो जाती है, बुरे शासक से राष्ट्र नष्ट हो जाते है और कुकर्म से मनुष्य का यश नष्ट हो जाता है।'

'सोकर नींद को जीतने का प्रयत्न न करें, काम द्वारा स्त्री को वश में करने का प्रयत्न न करें, ईंधन से आग को बुझाने का प्रयत्न न करें और अधिक पीकर मद्य के दुर्व्यसन को शांत करने का प्रयत्न न करें।

—'महाभारत

मूर्ख हितैषी से बुद्धिमान शत्रु ही अच्छा है ।'

—'पंचतंत्र'

असुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई'

—'मीरा'

'तप ज्योति अर्थात् अग्नि है। जीव ज्योति-स्थान है। मन, वचन और काया के योगस्रुवा-आहुति देने की कड़छी है। शरार कारीषाग अग्नि प्रज्वलित करने का साधन है। कर्म जलाए जाने वाला ईंधन है। संयम योग शान्ति पाठ है।'

—'उत्तराध्ययन'

'मिट्टी के सूखे गोले के समान विरक्त साधक कहीं भी चिपकता नही है। और न उसक रागरहित भावा म कर्मबन्ध ही होता है।'
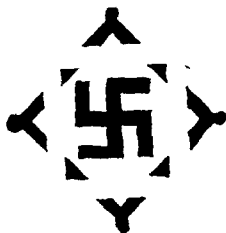
—उत्तराध्ययन

'ज्यो ज्यो लाभ होता है, त्यो त्यो लोभ होता है। इस प्रकार लाभ से लोभ निरन्तर बढता ही जाता है। दो माशा सोने से संतुष्ट होने वाला करोडो (स्वर्ण मुद्राओ) से भी सन्तुष्ट नही हो पाया।'

—'उत्तराध्ययन'

'विपत्ति मे धैर्य, ऐश्वर्य मे क्षमा, सभा मे वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश मे रुचि, शास्त्र मे अनुराग-ये विशेषताएं महात्माओ मे स्वभाव सिद्ध होती है।'

—'भर्तृहरि'

सुमति के बिना शक्ति केवल मूर्खता और पागलपन है।'

—'शेख सादी'

Ajay J. Mehta

703 Mahaveer Appartment, Athwa Lines
SURAT

Phone 33876 - 35569

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।'

—'वृंद,

Praveenbhai Manilal Shah

Office Hawara Seri Mahindar Pura SURAT

Residence 205 Smita Appartment No 2 Kazi Ka Maidan
Gopi Pura SURAT

'जिस प्रकार घिसने, काटने, तपने और पीटने—इन चार उपा
यों से स्वण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार त्याग, शील,
गुण और कम इन चारों से मनुष्य की परीक्षा होती है।'

— चाणक्य'

'हे जीभ ! धार्मिको के दानादि गुणो का गान करने मे अत्यन्त प्रसन्न होकर तत्पर रहो। कानो ! दूसरो की कीर्ति सुनने मे रसिक होकर सुकर्ण (अच्छे कान) बनो। नेत्रो ! दूसरो की बढती हुई लक्ष्मी को देखकर प्रसन्नता प्रकट करो। इस असार संसार मे जन्म पाने का तुम्हारे लिए यही मुख्य फल है।'

—'शान्त सुधारस, प्रमोद भावना'

'अपमान के साथ जीने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है।'

—'चाणक्य'

हमार सर्वोतम विचार दूसर की दन हैं ।

—'एमसन'

'ऋषि मुनि भी स्वाभिमान का परित्याग नहीं कर सकत ।'

—'राजतरगिणी'

'दो बातें मानसिक दुर्बलता प्रकट करती है—एक तो बोलने के अवसर पर चुप रहना, दूसरे चुप रहने के अवसर पर बोलना ।'

—'शेख सादी'

'स्वर्ण का कथन है—मुझे आग से तपाये जाने, काटे जाने और कसौटी पर कसे जाने का दुःख नहीं है, सबसे बड़ा दुःख यह है कि मुझे घुघची से तोला जाता है।'

'जो धूल पैर से आहत होने पर उठकर सिर पर चढ़ जाती है, वह उस मनुष्य से अच्छी है, जो अपमान होने पर भी शान्त बैठा रहता है।'

—'शिशुपालवध'

‘जिस प्रकार लोहा कीचड़ मे पड़ कर विकृत हो जाता है, उसे जंग लग जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी पदार्थो मे राग भाव रखने के कारण कर्म करते हुए विकृत हो जाता है-कर्म से लिप्त हो जाता है।’

—‘समयसार’

'विद्या विनय देती है, विनय से योग्यता या सुपात्रता मिलती है, योग्यता से धन लाभ धन से धर्म और धर्म से सुख होता है।

'देवता न तो काठ मे रहते है; न पत्थर मे ओर न मिट्टी मे । देवता तो भाव मे रहते है, इसलिए भाव ही सबका कारण है ।'

—'चाणक्य'

'जिसका हृदय कलुषित और दम्भयुक्त है, किन्तु वाणी से मीठा बोलता है। वह मनुष्य विष के घड़े पर मधु के ढक्कन के समान है।'

'बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नही, फल लागै अति दूर ॥'

—'कबीर'

'थोड़ा रहन पर जो दान दिया जाता है, वह हजार के बराबर माना गया है ।'

—'जातक'

'परिग्रह रूपी वृक्ष के स्कन्ध अर्थात् तन हैं-लोभ, क्लेश और कषाय। चिन्ता रूपी सैंकडो ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखायें हैं।'

—'प्रश्न०'

'शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श मे जिसका चित्त न तो अनुरक्त होता है और न द्वेष करता है, उसी का इन्द्रिय-निग्रह प्रशस्त होता है।'

—'दशवैकालिक'

'कहीं विद्वानों की गोष्ठी होती है तो कहीं मदोन्मत्त लोगों का कलह दिखाई पड़ता है, एक ओर वीणा का नाद सुनाई पड़ता है, दूसरी ओर हाहाकार के साथ क्रन्दन मचा है। कहीं सुन्दरी रमणी और कहीं जरा जीर्ण शरीरवाले मिलते हैं। पता नहीं यह संसार अमृतमय है या विषमय।'
—'भर्तृहरि'
GWALIOR SUITING
SHEEL
Mills Authorised Retail Showroom
Airconditioned
149 Bapu Bazar JAIPUR 302003
Phone 66437 Res 64622
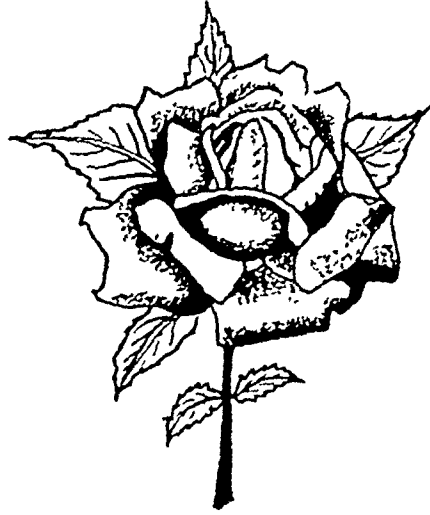
छिद्रोंवाली नौका पार नहीं पहुंच सकती, किन्तु जिस नौका मे छिद्र नहीं है वही पार पहुंच सकती है। असमत छिद्र है, उन छिद्रों को रोकना सयम है अर्थात् सयती आत्मा ही ससार सागर को पार कर सकती है।'

—'उत्तराध्ययन

'क्रोध से आत्मा नीचे गिरता है। मान से अवमगति प्राप्त करता है। माया से सद्गति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। लोभ से इस लोक और परलोक–दोनों मे ही भय-कष्ट होता है।'

–'उत्तराध्ययन'

'कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) को अग्नि कहा है। उसको बुझाने के लिए श्रुत (ज्ञान), शील, सदाचार और तप जल के समान है।'

—'उत्तराध्ययन'

'संयमी साधक के द्वारा कभी हिंसा भी हो जाय तो वह द्रव्य हिंसा होती है, भाव हिंसा नही। किन्तु जो असंयमी है, वह जीवन में कभी किसी का वध न करने पर भी, भावरूप से सतत हिंसा करता रहता है।'

—'बृहत्कल्प भाष्य'

'मूर्ख को उपदेश देना उसके क्रोध को बढ़ाना है, शान्त करना नही। साप को दूध पिलाना उसके विष को बढ़ाना है।'
'सबसे उत्तम बदला क्षमा कर देना है।

—'रवीन्द्रनाथ ठाकुर'

'जिसके घर में माता नहीं है और स्त्री कर्कशा है उसको वन में चले जाना चाहिए क्योंकि उसके लिये घर और वन एक से हैं।'

—'चाणक्य'

'जो व्यक्ति आलस्य-प्रमाद के वश, मनुष्य जन्म को व्यर्थ गँवा रहा है, वह अज्ञानी मनुष्य सोने के थाल में मिट्टी भर रहा है, अमृत से पैर धो रहा है, श्रेष्ठ हाथी पर ईंधन ढो रहा है और चिन्तामणि रत्न को काग उड़ाने के लिए फेंक रहा है।'

—'सिन्दूर प्रकरण'

'जो पहले के उपकार को भूल जाता है उसे बाद में फिर काम पड़ने पर कोई उपकार करने वाला नहीं मिलता।'

—'जातक'

'एक मात्र धर्म ही परम कल्याणकारक है, एक मात्र क्षमा ही परम शान्तिदायनी है, एकमात्र विद्या ही परम तृप्ति देनेवाली है एक मात्र अहिंसा ही परम सुखदायिनी है।

—महाभारत

'शराब का एक प्याला मनुष्य को बुद्धिहीन बनाता है, दूसरा प्याला पागल बना देता है और तीसरा डुबो देता है, अर्थात् चेतना हीन बना देता है।'

—'शेक्सपियर'

'दूसरों से ईर्ष्या करने वाले, घृणा करने वाले, असंतोषी, क्रोधी, सभी बातों में शंका करने वाले और दूसरे के धन से जीविका निर्वाह करने वाले—ये छहों सदा दुखी रहते हैं।'

—'महाभारत'

'दोपहर के पहले की छाया प्रारम्भ से बड़ी और फिर धीरे-धीरे छोटी होने लगती है; वही दशा दुष्टों की मित्रता की है। सज्जनों की मित्रता दोपहर के बाद की छाया के समान होती है, जो आरम्भ में छोटी होती है लेकिन धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है।'

उद्याग क बिना तिला म स तेल नहीं निकलता ।'
—'पचतत्र'

'जागते रहने वाले की रात लंबी हो जाती है, थके हुए का योजन लंबा हो जाता है, इसी प्रकार सद्धर्म को न जानने वाले मूर्ख आदमी का संसार लंबा हो जाता है।' —धम्मपद

'नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, सत्पुरुषों के साथ मेलजोल होना, अपनी कमाई से जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना, ये छः मानव लोक के सुख हैं।'

—महाभारत
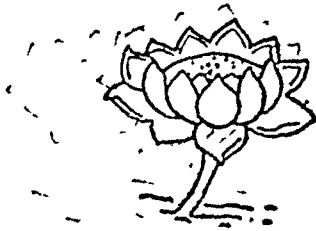
युद्ध जीतने से ही कोई शूर नही हो जाता। इसी प्रकार शास्त्र पढ़ लेने से ही कोई पंडित नही हो सकता। वाक्पटुता से ही कोई सच्चा वक्ता नही होता और केवल धन दान करने से ही कोई दानी नही होता। सच्चा शूर वह है जो इन्द्रियो को जीत लेता है।'
SHREE TALKIES, AJMER
Manager S P. MATHUR
Phone 21171
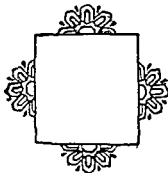
'मोह और स्वार्थ अज्ञान के पुत्र हैं अतः अज्ञानी ही दुष्ट और कायर होते हैं।'

—महात्मा गांधी

'बहस करना बहुत लोगों को आता है, बातचीत करना थोड़ों को ही।'

—आलकोट

'शिष्य के भी गुण और गुरु के भी दोष कह देने चाहिए।'
'गुणों का आधार प्रेम होता है, वस्तु विशेष नहीं।'

'मनुष्यता, कुलीनता, ऐश्वर्य, दीर्घजीवन, आरोग्य, सन्मित्र, सुपुत्र, सती भार्या, ईश्वर-भक्ति, विद्वत्ता, सौजन्य, जितेन्द्रियत्व, सत्पात्र को दान देने की प्रवृत्ति—ये तेरह गुण मनुष्यों को दुर्लभ है, पुण्य के बिना नही मिलते।'

'आदमी पहले शराब पीता है, फिर शराब शराब को पीती है—अर्थात् बार-बार पीने की इच्छा होती है और अंत में शराब आदमी को ही पीने लगती है।'

—'एक जापानी लोकोक्ति'

'सुनने की इच्छा करना, सुनना, सुनकर तत्व को ग्रहण करना, ग्रहण किए हुए तत्व को हृदय मे धारण करना, फिर उस पर विचार करना, अर्थात् उसे तर्क की कसौटी पर कसना, विचार करने के पश्चात् उसका सम्यक् प्रकार से निश्चय करना, निश्चय द्वारा वस्तु को समझना, अन्त मे उस वस्तु के तत्व की जानकारी करना—ये आठ बुद्धि के गुण है।'

—'अभिधान चिन्तामणि'

'अन्याय और अत्याचार करने वाला उतना दोषी नहीं है,
जितना कि उसे सहन करने वाला।'

—'तिलक'

सत्य एवं अहिंसा के अग्रदूत, अनेकान्त के प्रणेता, भगवान महावीर को कोटि कोटि नमन

सम्मान, सद्भावना एवं
शुभ कामनाओं के साथ—

- सुजानमल लोढा एडवोकेट
- डा. विनोदकुमार जैन
- प्रदीपकुमार जैन
- अनिलकुमार जैन

टोंक (राजस्थान)

'अहिंसा ही जगत की माता है, अहिंसा ही आनन्द का मार्ग है, अहिंसा ही उत्तम गति है तथा अहिंसा ही शाश्वत लक्ष्मी है।'

—'ज्ञानार्णव'

'एक दोष बहुत से गुणों को भी नष्ट कर देता है।'
'गुरु आज्ञा का पालन करना सब गुणों से बढ कर है।'
—'त्रिषष्टिशालाका पुरुष चरित्र'
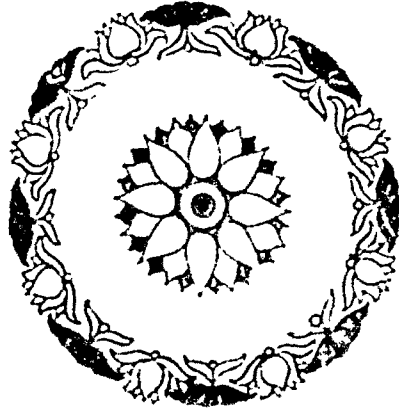
गुलाबी नगर जयपुर के
एक सुश्रावक की ओर से